||२१७||

।। रामकथा ।।

मोरारिबापू

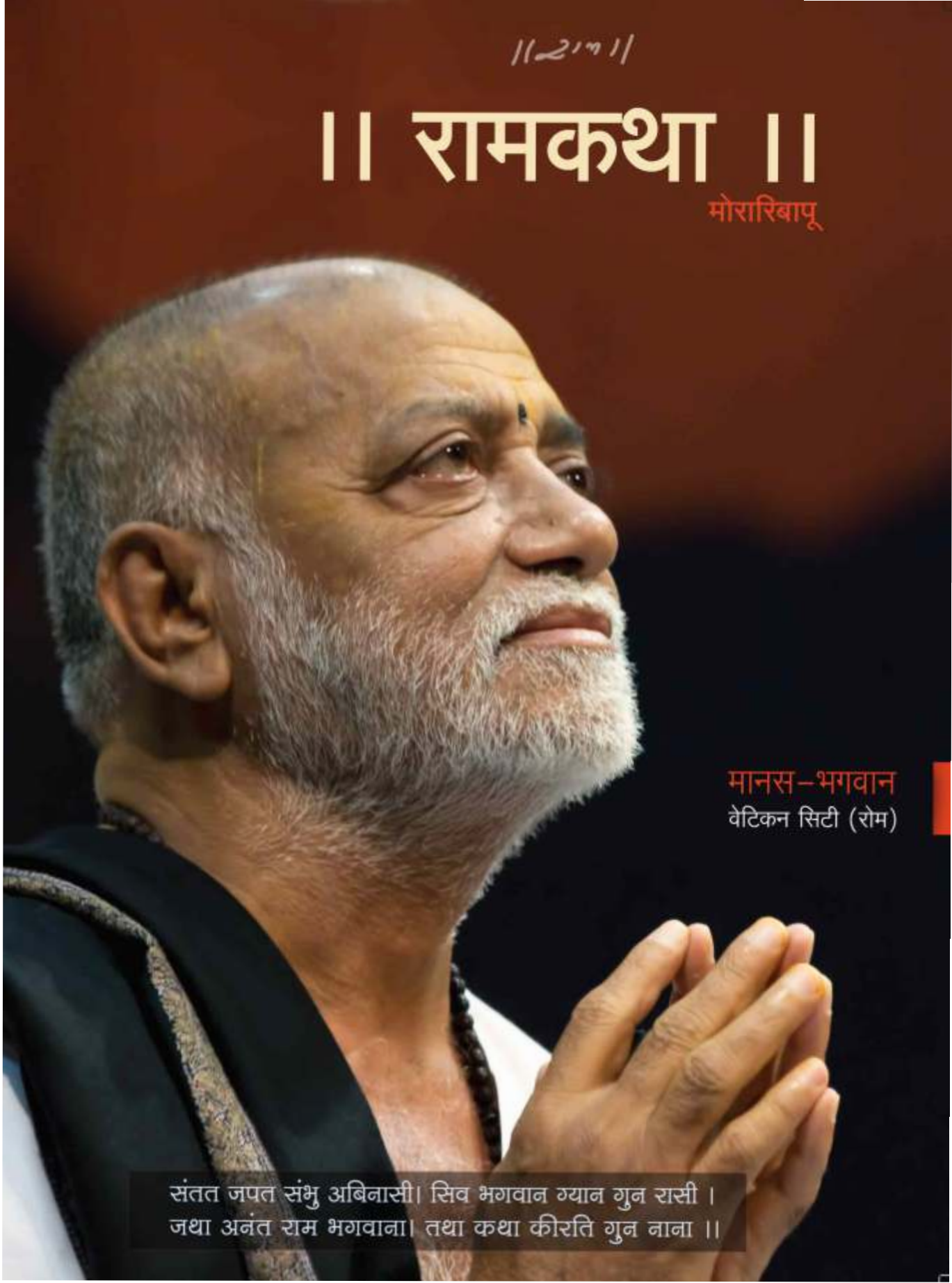

मानस–भगवान

वेटिकन सिटी (रोम)

संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी ।
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना ।।

मानस-भगवान

१. जिसमें रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण का भी गर्व न हो वह भगवान की पदवी के योग्य है
२. भगवान दिल की धड़कनों को दिल की धड़कनों से सुनता है
३. संत, शायर और फ़कीर किसीका द्रोह नहीं करता, लेकिन सविनय विद्रोह करता है
४. भगवान की कथा एक प्रयोगशाला है
५. भक्त के लिए आए और सबको जिनका लाभ मिल जाए वह भगवान
६. भगवान भाववश है, भोगवश नहीं
७. वह भगवारन है, जो भक्त की आरति हरे
८. निरंतर हरिनाम चालु हो ऐसा भजनानंदी भगवान है
९. जो हमें विजय दे, विवेक दे और विभूति दे वो भगवान

|| रामकथा ||
मानस-भगवान

मोरारिबापू
वेटिकन सिटी (रोम)
दिनांक : २८-६-२०१४ से ६-७-२०१४
कथा-क्रमांक : ७६२

प्रकाशन :
मार्च, २०१५

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

हिन्दी अनुवाद
प्रो. कमल महेता

राम-कथा पुस्तक प्राप्ति
सम्पर्क-सूत्र :
ramkatha9@yahoo.com

ग्राफिक्स
स्वर अेनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू की रामकथा ता. २८-६-२०१४ से ता. ६-७-२०१४ के दिनों में वेटिकन सिटी (रोम) में सम्पन्न हुई। रोम की इस रामकथा को 'मानस-भगवान' विषय पर केन्द्रित करते हुए बापू ने कहा कि ''इसु को भगवान इसु कहते हैं, कभी हमने बुद्ध को भगवान कहा, महावीर को भगवान कहा, कई आचार्यों को हमने 'भगवान' संबोधन से पुकारा है। तो, मैं इस कथा को 'मानस-भगवान' के रूप में आपके सामने रखूं।''

कथा के प्रारम्भ में ही बापू का निवेदन रहा कि मेरी दृष्टि में भगवान वो है जिसमें मानवरूप में भी भगवता ऊतरी हो; जिसने भगवता को रिसिव किया हो। मेरे केन्द्र में है दो हाथवाला भगवान, द्विमुख परमेश्वर। शास्त्रों में निर्दिष्ट स्वयंव्यक्त, देवताओं द्वारा स्थापित किया गया, सिद्ध एवं मानुष जैसे भगवान के चार प्रकार का अर्थघटन भी बापू ने पेश किया और अपना मत स्पष्ट किया कि मेरा लक्ष्य है मानुष भगवान। मानव-भगवान समझ में आ जाए तो अन्य तीनों भगवान समझ में आ जाएंगे।

'भगवान' शब्द के बारे में मुझे शब्दकोश से नहीं, जीवनकोश से कुछ कहना है, ऐसी आत्मप्रतीति के साथ बापू ने 'भगवान' शब्द के प्रत्येक वर्ण का अपनी निजी शैली में भाष्य किया, '' 'भगवान।' मेरी समझ में इनके एक-एक अक्षर के साथ तीन-तीन वस्तु जुड़ी है। 'भ' का मैं मेरी जिम्मेवारी से अर्थ करना चाहता हूं, भजन। और 'भजन' का अर्थ मैं करूं, भरोसा। भरोसा तीन प्रकार का-मन का भरोसा, वचन का भरोसा और कर्म का भरोसा। 'ग' मानी गर्व, अहंकार। जिसमें रजोगुण का गर्व नहीं है, तमोगुण का गर्व नहीं है और सतोगुण का भी गर्व नहीं है, वो भगवान की पदवी के योग्य है। 'वा' का मेरी व्यासपीठ अर्थ करती है, वात्सल्य। वात्सल्य भगवता की निशानी है। 'न' का अर्थ मैं करता हूं नज़र, दृष्टि। तीन प्रकार की दृष्टि जहां हो उसको भगवान समझना। पहली देहदृष्टि; दूसरी दिल की दृष्टि; तीसरी दयालु की दृष्टि। यदि कोई ऐसा दिखे तो मुझे उसे 'भगवान' कहने में आपत्ति नहीं है।''

'भगवान भाववश है, भोगवश नहीं।' ऐसे सूत्रपात के साथ बापू ने रेखांकित किया कि हमारे पास कितने ही भोग के प्रसाधन हो, भगवान उनसे वश नहीं होता; वह केवल भाव से वश होता है। हमारे पास कितनी भी प्रभावक भाषा हो, भगवान भाषा से पकड़ में नहीं आता; भगवान आदमी के भाव की पकड़ में आता है। और भगवान हमारे कोई विशेष भेष, विशेष युनिफोर्म से वश नहीं होता; वह केवल भाववश है।

ईसाई धर्म की एक बहुत बड़ी धारा-केथोलिक धारा-का जहां धर्मस्थान है, वैसी वेटिकन की भूमि में हुई रामकथा अन्तर्गत भगवान के विभिन्न दार्शनिक पहलूओं का व्यासपीठ से उद्घाटन हुआ।

– नीतिन वडगामा

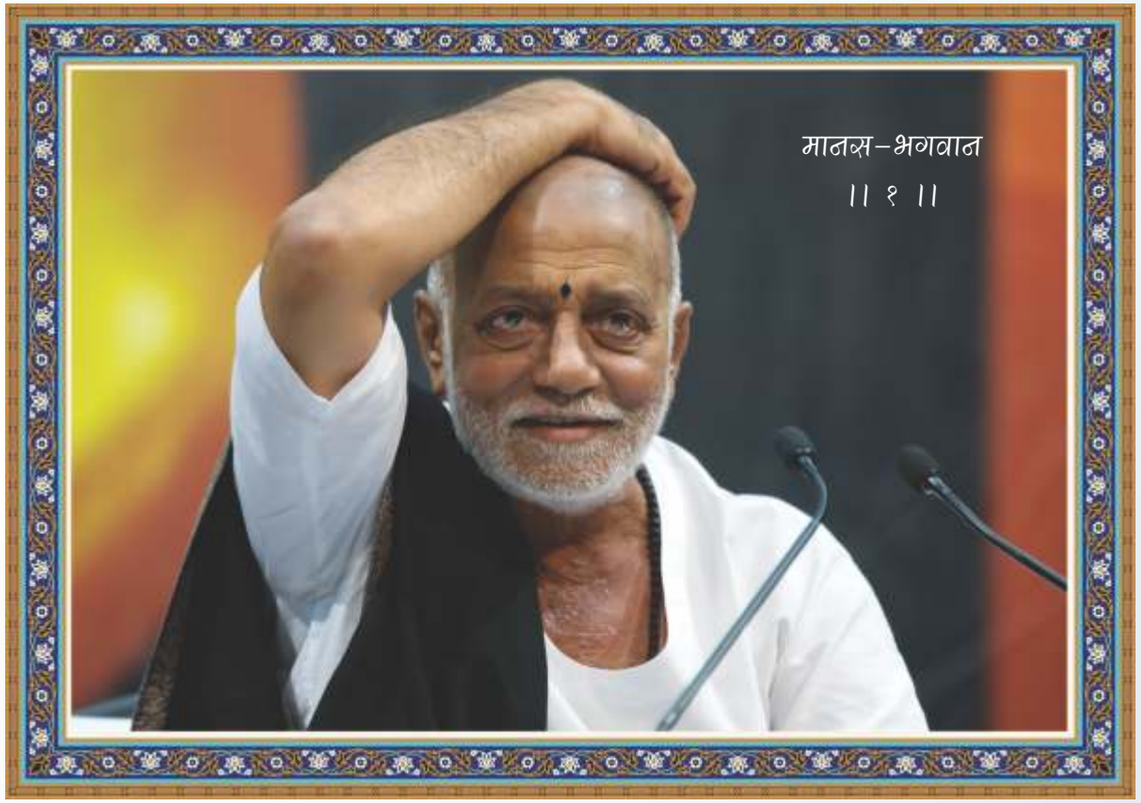

जिसमें रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण का भी गर्व न हो वह भगवान की पदवी के योग्य है

संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी ।
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना ।।

बाप, इस नवदिवसीय रामकथा के आरंभ में भगवान राम की शरणागति, श्री हनुमानजी महाराज की शरणागति, सद्गुरु भगवान की शरणागति लेते हुए जिस भूभाग में, जिस भूमि पर हम आए हैं रामकथा के लिए; तो, सब से पहले मैं भगवान ईसु की प्रेमपूर्ण चेतना को प्रणाम करता हूं। और भगवान, प्रभु ईसु के प्रधान शिष्यों में से सेन्ट पिटर, जिसकी ये भूमि है, और ईसाई धर्म की एक बहुत बड़ी धारा केथोलिक, उस धारा का बहुत बड़ा जहां धर्मस्थान है-वेटिकन, उस भूमि पर भगवान राम की कथा का आरंभ हो रहा है। आप सभी को और पूरी दुनिया को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम।

मुझे बहुत विध-विध क्षेत्र से पूछा गया कि वेटिकन में रामकथा का क्या हेतु? मैं अंदर से मुस्कुराता हूं कि क्या सब कार्य हेतु से ही करना है? जीवन में कोई ऐसा कार्य नहीं कि जिसके पीछे कोई हेतु न हो? केवल, केवल और

केवल दिल का प्रेम हो, हेत हो। फिर भी मेरा एक मनोरथ, पूरा हो न हो वो तो हरि के आधीन होता है; लेकिन एक शिवसंकल्प रहता है कि दुनिया में जिन्हों ने सत्य की स्थापना के लिए कुरबानियां दी है, दुनिया में प्रेमप्रसार के लिए जिन्हों ने बलिदान दिया है, दुनिया में अणु-अणु के प्रति करुणा बहाने का जिन्होंने भरपूर प्रयत्न किया है और ऐसी विशिष्ट चेतनाओं का, भगवानों का, जहां-जहां विशेष स्थान है, ऐसे स्थान में जाकर रामकथा का एक-एक अनुष्ठान किया जाय। इसलिए कभी मेरी व्यासपीठ जेरुसलाम गई, कभी हिरोशिमा गई, कभी मेरी व्यासपीठ बुद्ध के स्थानों पर गई। शायद अगली साल महावीर की भूमि पर भी जाय।

तो, इसी एक स्वाभाविक क्रम में मन में था कि इतना बड़ा धर्मस्थान है, दुनिया का कितना बड़ा हिस्सा संख्या के रूप में जिस धर्म को फोलो करता है, उस भूमि पर क्यों न मैं एक रामकथा गाऊं? इसलिए आया हूं। आप भी आ गए हैं। आप सब का स्वागत है। निमित्त बना एक युवक रूपीन, वो ईंग्लिश में बोला, वो अच्छा बोला, खुश रहो, बाप!

अब सवाल था, मैं सोच रहा था कि यहां मैं कौन विषय लूं? तो, मैंने सोचा कि प्रभु ईसु को 'भगवान' ईसु कहते हैं, कभी हमने बुद्ध को भगवान कहा, महावीर को भगवान कहा, कई आचार्यों को हमने 'भगवान' संबोधन से दिल से पुकारा है। तो, मेरे मन में ये हुआ, निर्णय तो हवाई जहाज में किया कि मैं इस कथा को 'मानस भगवान' के रूप में आप के सामने रखूं।

हम इन दिनों में आप के सामने बातचीत करेंगे, सोचेंगे। 'भगवान' शब्द आता है तो आप ये मत सोचे कि ये कोई बहुत बड़ी हस्ति की बात है। मेरी दृष्टि में भगवान वो है जिसमें मानवरूप में आदमी हो तो भी भगवता उतरी हो; जिसने भगवता को रिसिव किया हो। 'भगवान' मानी चार हाथ; वो तो भगवान है ही लेकिन मेरे केन्द्र में है भगवान द्विभुज परमेश्वर, दो हाथवाला। और आप मेरी रामकथा के श्रोता है, भगवान राम कौशल्या के सन्मुख प्रकट होते थे तब कुछ और थे लेकिन कौशल्या ने कहा, आप इस रूप में नहीं, मानवरूप में आईए। और 'रामचरित मानस' के इन अमृतवचन से आप परिचित हैं कि -

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।।

भगवान मानव रूप में परिणत हुए। और यहां कौन मानव भगवान नहीं है? हमें समझ नहीं है हमारी भगवता की अथवा तो भगवता को हम रिसिव न कर पाए। बाकी यहां कौन भगवान नहीं है?

भगवान बुद्ध को एक बार पूछा गया था कि 'आप बुद्ध है?' कुछ समय के बाद बुद्ध ने कहा, 'नहीं।' फिर दूसरा प्रश्न पूछा गया, 'आप प्रबुद्ध है?' भगवान बुद्ध ने कहा, 'नहीं।' फिर तीसरा प्रश्न पूछा गया, 'आप योगी है?' बुद्ध ने कहा, 'नहीं।' फिर पूछा गया, 'आप संन्यासी है?' बुद्ध ने कहा, 'नहीं।' फिर पूछा गया, 'आप भिख्खु है?' बुद्ध ने कहा, 'नहीं।' 'तो सब तो आप को बुद्ध कहते हैं, तो आप है कौन?' बुद्ध ने कहा, 'मैं स्वयं बोध हूं।' ऐसा स्वयं बोध जिसमें उतरा वो मानव भगवान है। भगवान ईसु, उसकी प्रेमपूर्ण चेतना को, प्रेम के रूप में जिसमें भगवता उतरी।

तो, कौन यहां भगवान नहीं है? और आंख खुल जाए तो सब भगवान है। मेरे गोस्वामीजी की तो एक पंक्ति है, आप जानते हैं -

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

'उपनिषद' का उद्घोष है कि सर्व ब्रह्ममय है। 'मानस' कहता है कि सीयाराममय है, भगवानमय है। रमण महर्षि को हमने 'भगवान' कहा। मुझे तो मेरे युवान भाई-बहनों से ज्यादा बातचीत करनी है। कैसा मानव हमें मिले कि जिसमें भगवता हो। भगवता की परख क्या?

आप के पास समय है ना? मैं स्लेट-पेन लूं। मुझे गुरुकृपा से जो समझ में आया है, मैं ऐसे मानव को भगवान कहना चाहता हूं। युवान भाई-बहन! भगवान राम, भगवान कृष्ण किस रूप में भगवान है? उसने चमत्कार किए इसलिए भगवान? मैं तो सुबह में एक फूल खिलता है तो चमत्कार समझता हूं। चमत्कार मानी क्या? भगवान मानी क्या? 'रामचरित मानस' में बहुत बार 'भगवान' शब्द आया। ये जो पहली पंक्ति मैंने ली, 'सिव भगवान', वहां भगवान है, बाकी 'भगवाना' शब्द बहुत है कविता के प्रास के लिए। बहुत बार 'भगवान' शब्द है।

तो, आज पहले दिन भूमिका में, हम किस भगवान के बारे में बातें करने जा रहे हैं? आसमां में रहा भगवान बहुत दूर पड़ता है। आसमां में हो वो भगवान? आसमां स्वयं भगवान है। जैसे बुद्ध ने कहा, 'मैं बोध हूं;' जैसे शंकराचार्य ने कहा, 'शिवोऽहम्;' जैसे उपनिषद ने कहा, 'मैं ब्रह्म हूं।' जिसमें उतरी है ये भगवता वो कह सकता है कि मैं भगवान हूं। लेकिन है मानव के रूप में।

'भगवान।' अब मुझे आप के सामने मेरी जिम्मेवारी के साथ इस 'भगवान' की व्याख्या नहीं, शब्दकोश से नहीं, जीवनकोश से कुछ कहना है। ये चार अक्षर, इनके मेरी समझ में वो एक-एक अक्षर के साथ तीन-तीन वस्तु जुड़ी है। पहला अक्षर 'भ', 'भ' को मैं तीन रूप में देखना चाहता हूं। मैं इन 'भ' का अर्थ तीन रूप में देखुं, जिसमें देखुं तो मुझे उसके भगवान कहने में आपत्ति नहीं है। और चारों का जो तीन-तीन अर्थ है, तीन-तीन सूत्र है, ये बारह सूत्र हो जाएंगे। 'भ' का मैं मेरी जिम्मेवारी से अर्थ करना चाहता हूं, भजन। और आप मेरे श्रोता है, आप सब जानते हैं कि 'भजन' का बहुत समय से एक अर्थ जो समझ में आया है, मैं कहता हूं, भरोसा ही भजन है। 'रामचरित मानस' कहता है 'बिनु बिस्वास भक्ति नहीं।' विश्वास नहीं तो भजन क्या?

तो, 'भ' का अर्थ मैं 'भजन' करूं और 'भजन' का अर्थ मैं करूं, भरोसा। भरोसा तीन प्रकार का। जिस व्यक्ति में अपने मन पर पूरा भरोसा हो। बहुत कठिन है। लेकिन 'रामचरित मानस' में मुझे जवाब मिलता है इसलिए मैं बोलता हूं।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ।
मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ।।

तुलसीदासजी ने लिखा है भगवान राम का एक वक्तव्य। पुष्पवाटिका में वो कहते हैं, रघुवंशी का एक सहज स्वभाव है कि उसका मन कभी कुपंथ में न जाए। और तब राम बोले हैं कि मुझे मेरे मन पर बहुत भरोसा है। प्रतीति मीन्स भरोसा। इसलिए राम भगवान है। जिसस को उसके मन पर भरोसा है इसलिए वो भगवान है। बुद्ध को अपने मन पर भरोसा है इसलिए बुद्ध भगवान है। राम ने कहा, 'लक्ष्मण, मुझे मेरे मन पर भरोसा है।' कठिन तो बहुत है। यदि हमें अपने मन पर भरोसा है तो हमें भगवान बनकर पूज्य नहीं होना है। पूज्य होना बहुत आसान है, प्रिय होना कठिन है। और प्रिय होने के बाद सब को प्राप्य होना तो उससे भी ज्यादा कठिन है। मेरी समझ में नहीं आता, धर्मजगत सबको प्राप्य क्यों नहीं है? पूज्य तो है। कुछ ऐसी चेतना है उसमें तो प्रिय भी है, प्राप्य नहीं है। तो, जिसको अपने मन पर पूरा यकीन है और भरोसा है। गंगासती गुजराती में बोली-

मेरु रे डगे ने जेनां मन नो डगे,
मरने भांगी पडे रे भरमांड रे.
विपद पडे पण वणसे नहिं,

इ तो हरिजननां परमाण रे...

मन का भरोसा; 'गीता' ने मन पर बहुत कहा है। बड़ा विचित्र सूत्र है। भगवान कहते हैं, जिसको अकुशल कर्म में द्वेष नहीं है और कुशल कर्म में आसक्ति नहीं है उसका मन त्याग के शिखर तक पहूंचा है। समझ में न आए तो ये सूत्र बड़ी भ्रांति पैदा कर सकता है! जिस व्यक्ति को अकुशल कर्म में द्वेष नहीं है; अकुशल कर्म हुआ, द्वेष नहीं। ऐसा कृष्ण ही कह सकते हैं। कुशल कर्म में जिसकी आसक्ति नहीं है; जिसके मन में एक भी संशय न रहा; संशय का गोडाउन मन है। इसलिए मन पर भरोसे का मतलब कि 'छिन्न संशयाः।' दुनिया में मंदिर मिलता है तो मंदिर के मुताबित मूर्ति नहीं मिल रही है! अच्छा मंदिर मिल जाए, अच्छी मूर्ति मिल जाए तो अच्छा पूजारी नहीं मिलता! और पूजारी भी मिल जाए तो छिन्न संशय नहीं मिलता!

यहां अकुशल कर्म मतलब? हम जीव हैं, हमें भगवान का एक रूप पहचानना है, लेकिन है तो हम जीव। हम अकुशल कर्म कर लेते हैं और 'गीता' कहती है, जो द्वेष न करे अकुशल कर्म में। और कुशल कर्म हम करते हैं तो आसक्ति भी हो जाती है; कैसे अर्थ करे? लेकिन जिसका मन 'छिन्न संशय' हो। तो, इतना ही छोटा-सा अर्थ। मैं उपदेश नहीं कर रहा, उपदेश की हमारी औकात नहीं। उपदेश तो महापुरुष दे सकते हैं। लेकिन हम आप से बातचीत करते रहे हैं कि मन पर भरोसा हो। हम एक शरणागति पर टिके हैं? हम एक मंत्र पर टिके हैं कि भटकते हैं? और कोई बड़े से बड़े ऐसे स्थान में आदमी हो, क्या हो यदि मन संशयमुक्त नहीं है? एक शे'र है -

देखा गया वो पहले बहुत मस्जिदें बनाता था,
सुना है वो कोई नमाज़ी खोज रहा है।

मस्जिदें तो बहुत बन गई, नमाजी नहीं मिल रहा!

तो, मन का भरोसा। कठिन भी बहुत है, लेकिन सोचे जरूर। पहला सूत्र, मन पर भरोसा। दूसरा, वचन पर भरोसा। जिसको अपनी बोली पर भरोसा हो। बोलनेवाले को अपने बोल पर भरोसा हो और सुननेवाले को जिसको वो बुद्धपुरुष समझता हो उसके बोल पर भरोसा हो। ये भगवानपने का दूसरा सूत्र है। 'मानस' में उसका प्रमाण है-

सदगुरु बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय कै आसा।।

ये ब्रह्मांड वचन पर चलता है, साहब! 'वचने थापवुं अने वचने उथापवुं।' ये बात अनुभव से संतों ने कही है। ये भी कठिन है। हम तो बुद्धपुरुष के बोल का अर्थ भी अपने अनुकूल करते हैं! और तीसरा है कर्म-विश्वास।

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

कर्म पर भरोसा करना पड़ेगा, क्योंकि कर्म जो बोया है वो फलेगा। भारतीय कर्मसिद्धांत में कर्म को बहुत विश्वास के साथ स्थापित किया गया है। हमें और आप को भरोसा होना चाहिए कि मेरे कर्म का फल लगेगा। गुजराती में एक भजन है -

देवा तो पडे छे अंते, आडा रे फरे छे;
करेलां करमना बदला देवा तो पडे छे।

तो, 'भ' मानी भजन; भजन मानी भरोसा; भरोसा मानी मन का भरोसा, वचन का भरोसा और कर्म का भरोसा। दूसरा अक्षर है, 'ग'; 'ग' मानी गर्व, अहंकार। तीन प्रकार का अहंकार जिसमें न हो उसको भगवान कहने में मुझे आपत्ति नहीं है। जिसमें रजोगुण का गर्व नहीं है, जिसमें तमोगुण का गर्व नहीं है और जिसमें सतोगुण का भी गर्व नहीं वो भगवान की पदवी के योग्य है। और ये जो जो सूत्र गुरुकृपा से मैं आप के पास रख रहा हूं; 'रामचरित मानस' में जिसको-जिसको भगवान कहा है उसको लागू होता है।

रजोगुणी गर्व। मैं कोई धन-दौलत की आलोचना नहीं करता। लेकिन धन-वैभव, पद-प्रतिष्ठा इसका जिसमें गर्व न हो वो भगवता की ओर जा रहा है। कठिन तो बहुत है। रजोगुणी गर्व जिसमें न हो, मुझे भगवान कहने में आपत्ति नहीं है। धन-दौलत हो लेकिन गर्व न हो तो उसकी आलोचना नहीं होनी चाहिए।

तमोगुणी गर्व; तमोगुणी मानी 'मुझमें इतना बल है, मैं किसी को भी दबा सकता हूं।' यद्यपि उसमें बल है, वो कुछ भी कर सकता है लेकिन यदि उसमें ये गर्व है तो भगवता कोशो दूर है! लेकिन ये सब सामर्थ्य होते हुए भी गर्व नहीं है, तो उसको भगवान समझने में मुझे देर नहीं लगती। मैंने कई लोगों को देखा है, यद्यपि मैं उसको भगवान कहूं तो उसे अच्छा न लगे। कई लोग है, सामर्थ्य होते हुए उसने कभी तमोगुणी गर्व नहीं किया। पेन्ट-कोट में वो भगवान है। क्यों एक छोटे बच्चे को हम भगवान कहते हैं? क्योंकि वो गर्वमुक्त है। उसको बहुत अच्छे कपड़ें पहना दो, गर्व नहीं करेगा, एन्जोय करेगा अवश्य। फिर, 'मैं साधु हूं, सीधा-सादा हूं, मैं किसीको कुछ नहीं कहता', ऐसा सत्त्वगुण का गर्व भी भगवता से दूर रखता है। तू हो तो हो, घोषणा मत करो। ज्यादा विस्तार न करूं।

'वा'; 'वा' का मेरी व्यासपीठ अर्थ करती है, वात्सल्य। एक बस्तु बहुत जाहिर में मैं आपके सामने कहूं कि प्रेम की शुरूआत में कहीं न कहीं वासना और काम की गंध होती है। वात्सल्य में कभी कामना नहीं होती। एक माँ अपने बच्चे को वात्सल्य देती है। गुरु शिष्य को वात्सल्य देता है। बड़ा प्यारा शब्द है हमारी भाषा का और गुजराती भाषा का भी। बीचमें एक बात कह दूं, प्लीज़, गुजराती भूलना मत। गुजराती घर में तो बोलना ही। वात्सल्य में कामना की कोई गंध नहीं होती है। एक है माता-पिता और संतान के बीच में। दूसरा, गुरु और शिष्य के बीच में। संतपुरुष पूरी दुनिया को वात्सल्य लुटाता है। तो, मेरे भाई-बहन, वात्सल्य भगवता की निशानी है।

'न'; 'न' का अर्थ मैं करता हूं नज़र, दृष्टि। तीन प्रकार की दृष्टि जहां हो उसको भगवान समझना। कोई भी नज़र पहले तो देह देखेगी। लेकिन सत्संग करते-करते देह देखते-देखते एक देहदर्शन। एक होती है देहनज़र कि पहले दृष्टि देह पर जाए। 'न' का अर्थ मैं नज़र कर रहा हूं तो तीन प्रकार की दृष्टि। उसमें पहली

'भगवान।' मेरी समझ में इनके एक-एक अक्षर के साथ तीन-तीन वस्तु जुड़ी है। 'भ' का मैं मेरी जिम्मेवारी से अर्थ करना चाहता हूं, भजन। और 'भजन' का अर्थ मैं करूं, भरोसा। भरोसा तीन प्रकार का - मन का भरोसा, वचन का भरोसा और कर्म का भरोसा। 'ग' मानी गर्व, अहंकार। जिसमें रजोगुण का गर्व नहीं है, तमोगुण का गर्व नहीं है और सतोगुण का भी गर्व नहीं है वो भगवान की पदवी के योग्य है। 'वा' का मेरी व्यासपीठ अर्थ करती है, वात्सल्य। वात्सल्य भगवता की निशानी है। 'न' का अर्थ मैं करता हूं नज़र, दृष्टि। तीन प्रकार की दृष्टि जहां हो उसको भगवान समझना। पहली देहदृष्टि; दूसरी दिल की दृष्टि; तीसरी दयालु की दृष्टि। यदि कोई ऐसा दिखे तो मुझे उसे 'भगवान' कहने में आपत्ति नहीं है।

देहदृष्टि। दूसरी दिल की दृष्टि। तीसरी दयालु की दृष्टि। ये तीन प्रकार की दृष्टि आप राम में पाओगे। राम भगवान है। जानकी अत्यंत सुंदर है, लेकिन इस पंक्ति में जिस दृष्टि से सौंदर्य की बात आई है -

सुंदरता कहुँ सुंदर करई।
छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।।

जानकी की सुंदरता ठाकुर ने देखी और लक्ष्मणजी के सामने वो कह रहे हैं कि क्या सौंदर्य है! लेकिन वो नज़र वहां नहीं रही। एक ही प्रसंग में आप पाओगे कि नज़र कितना स्थान बदल रही है! रामजी इस छबि को देखते हैं लेकिन वहां रुकते नहीं। उसी सुंदरता को अपनी हृदय की दीवार पर चित्रित कर लेते हैं। दृष्टि दिल तक गई। देह पर टिकनेवाली दृष्टि केवल दुन्वयी नज़र है। तो, बाप! नज़र देह पर गई लेकिन वहां रुकी नहीं। फिर दिल में गई। जानकीजी भी इस तरह राम को देखती हैं। नेत्र से राम को देखा, मर्यादा है। लेकिन फिर तुलसी क्या कहते हैं? राम के सौंदर्य को जानकी ने देखा और फिर नेत्र के मारग से उसको दिलमें उतारा। और फिर कवाड़ बंद कर दिया। तीसरी दृष्टि होती है, दयालु दृष्टि। दिल तक दृष्टि जाए अच्छी है लेकिन जिस दिल तक दृष्टि जाए उस दिल में दया न हो तो? भावनगर के मर्हूम शायर नाज़िर देखैया का शे'र-

जे दिलमां दयाने स्थान नथी
त्यां वात न कर दिल खोलीने,
एवा पाणी विनाना सागरनी
आ नाज़िरने कशी जरूर नथी.

तो, मेरे भाई-बहन! 'न' का मतलब है नज़र, दृष्टि। बहुत पवित्र भाव से देहदर्शन। फिर इसी यात्रा में उसके दिल तक का दर्शन। और उसी यात्रा में उसके दिल में रही दयालुता का दर्शन। शंकर दयालु है, इसलिए भगवान है। तो, ये 'भगवान' शब्द की तीन-तीन बातें आज मुझे पहले दिन कहनी थी। ये मेरी दृष्टि में यदि कोई ऐसा दिखे तो मुझे उसे 'भगवान' कहने में आपत्ति नहीं है।

तो, मेरे भाई-बहन! 'मानस भगवान' इस कथा का मूल विषय रहेगा। हमें द्विभुज परमात्मा चाहिए। भगवान हमें मानव के रूप में मिले। मैं तो ये भी कह सकता हूं कि दो हाथ से खुब कमाओ तब तक आप आधे भगवान है, लेकिन चार हाथ से बांटो तब पूरा भगवान। ऐसा मानव के रूप में भगवान हमें निकट पड़ेगा। आकाशवाला भगवान बड़ी दूर नगरी है। आकाश स्वयं भगवान है।

तो, जिसका नाम, भगवान राम का नाम शिव भगवान संतत भजते हैं; कैसे भगवान राम का नाम शिव

भगवान संतत भजते हैं? जिस भगवान की कथा, कीर्ति, गुन, नाना प्रकार के हैं, अनंत हैं। इसलिए इस दो पंक्तिओं का आश्रय मेरी इस कथा ने उठाया है।

इस 'रामचरित मानस', इसके सात सोपान है- बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका, उत्तर। ये उनका बाहरी रूप है, बाकी तो सभी ग्रंथों-शास्त्रों का समावेश है 'रामचरित मानस।' ऐसा ये सद्ग्रंथ। तो, सभी ग्रंथों का रस जिसमें संमिलित है ऐसा परम सद्ग्रंथ 'रामचरित मानस', उनके सात विभाग। उनमें 'बालकांड' प्रथम सोपान। उसके सात मंत्र। फिर बिलकुल लोकबोली में, पांच सोरठें में मंगलाचरण किया है। लोकभोग्य वाणी में तुलसी इस महान सद्ग्रंथ को उतारते हैं। गणेश, विष्णु, सूर्य, महादेव और दूर्गा का स्मरण। और फिर 'रामचरित मानस' का पहला प्रकरण गुरुवंदना। जिसको मेरी व्यासपीठ 'गुरुगीता' कहती है। उसकी कुछ पंक्तिओं का हम गायन करें -

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

मैं फिर एक बार कहूं, गुरु मानी कोई एक केवल व्यक्ति नहीं, एक विचार भी गुरु हो सकता है; एक कविता भी गुरु बन सकती है। कोई भी घटना आदमी को जाग्रत कर सकती है। मैं आज सुबह 'विवेकचूडामणि' देख रहा था, तो उसमें गुरु कैसा होना चाहिए उसका एक श्लोक मुझे अच्छा लगा -

श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः।।
ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः।
अहैतुकदयासिन्धुर्बन्धुरानमतां सताम्।।

जगद्गुरु आदि शंकराचार्य कहते हैं, बोध प्राप्त करना है तो ऐसे किसी सद्गुरु के पास जाना। 'श्रोत्रियः'; जो कोई भी सद्ग्रंथ का निष्णात है, उसका सार्थक अर्थ कर सकता है, अनुभव में लेने के बाद बोल सकता है, ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाए तो उसकी शरण में जाना, ये गुरु का लक्षण है। 'अकामहता'; हम जिसकी शरण में जाए, प्रसन्नता से और प्रसन्नता से वो हमारा समाधान करे उसके पीछे जिस महापुरूष को हमारे से कोई कामना न हो, जिसने कामना को खत्म कर दिया है, ऐसा कोई मिल जाए तो समझना ये गुरु है। 'ब्रह्मवित्तमः'; क्योंकि उसको हमारे से कुछ नहीं चाहिए, उसके पास ब्रह्म संपदा इतनी है कि उसको किसी की जरूरत नहीं। ब्रह्म में ही सदाय रममाण रहता है। और ब्रह्म मानी पूरा जगत। 'शान्तो'; जो शान्त है। लेकिन कैसे? अग्नि के भठ्ठे में इंधन जल गए हैं और अग्नि जैसे शांत होता है, ऐसा जो शांत है। है शांत लेकिन तेज बराबर है। उपद्रवी न हो। और 'अहैतुकदयासिन्धु'; कोई हेतु न हो लेकिन हमारे उपर दया करे। ऐसी सत्ता को, उसको शंकराचार्य भगवान गुरु के रूप में देखते हैं।

तो, ऐसे गुरु की वंदना। फिर सब की वंदना करते-करते तुलसीदासजी हनुमानजी की वंदना करते हैं। आज की कथा को विराम दूं इससे पूर्व हनुमंत वंदना-

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

हनुमानजी परम गुरु है, बिनसांप्रदायिक है, क्योंकि पवन सांप्रदायिक नहीं होता; अग्नि सांप्रदायिक नहीं होती; जल सांप्रदायिक नहीं होता; आकाश सांप्रदायिक नहीं होता। प्रकृति के महान तत्त्व जितने हैं वो हनुमंततत्त्व है। हनुमानजी केवल कोई एक विशेष धर्म का प्रतीक नहीं है, जीवन का प्राणतत्त्व है, सत्त्व-तत्त्व है। तो, श्री हनुमानजी महाराज परमगुरु है।

भगवान दिल की धड़कनों को दिल की धड़कनों से सुनता है

बाप! रामकथा के दूसरे दिन आरंभ में पुन: एक बार इस पावन धर्मस्थली को प्रणाम, भगवान ईसु और पूरी संत परंपरा को मेरा प्रणाम। आप सभी मेरे भगवानों को मेरा प्रणाम। मैंने कल कहा था कि आप कोई भी बात पूछने में स्वतंत्र है। मेरे पास बहुत-सी जिज्ञासाएं है। लेकिन इससे पहले हम प्रसंग के अनुरूप बातों में प्रवेश करें, भारत के लिए और पूरे जगत के लिए जो जगन्नाथ है वो भगवान की रथयात्रा का आज परम पावन दिन है। यानी श्रद्धा का भी दिन है और श्रद्धांजलि का भी दिन है। बधाई।

एक बहन ने 'भगवान' शब्द की व्याख्या की है। पहले तो मैं स्पष्ट करूं कि मैंने आपको प्रणाम करते वक्त कहा कि 'मेरे भगवानों को मेरा प्रणाम।' ये केवल मेरा कोई भाषा का खेल नहीं है। मैं बहुत बार बोल चुका हूं कि कभी-कभी लोग कहते हैं कि आप के अंदर बैठे हुए परमात्मा को मेरा प्रणाम। मैं इससे थोड़ा बिलग हूं। कमरे में ए.सी. है लेकिन हम बोलते हैं, पूरा कमरा ए.सी. है। हृदय में भगवान है इसके लिए सब दिल मेरे लिए भगवान है। नाद नाभि से निकलता है, आवाज़ कंठ से निकलती है। ये मेरा नाद है। और ये मेरी केवल आवाज़ नहीं। फिर मुझे शंकराचार्य भगवान मदद करते हैं कि 'शब्दजालम् महारण्यम्।' कभी-कभी तो मुझे ऐसा ही लगता है कि हुं आ बणगां

तो नथी मारतो ने! यद्यपि मेरी देश की मनीषा ने कहा है कि शब्द ब्रह्म है। लेकिन केवल बोलना क्या है? मेरे देश का ऋषि बहुत प्यारा शब्द युझ करते हैं, 'मंलाचरण।' शब्दविवेक तो देखिए! वहां 'मंगल उच्चारण' नहीं कहा, 'मंगल आचरण' कहा। सवाल है मंगल आचरण का। आरंभ में आचरण की प्रतिष्ठा की गई है। 'महाभारत' में कहा गया है कि मौन सबसे श्रेष्ठ है; लेकिन अवसर आने पर सत्य बोलना इससे भी श्रेष्ठ है। मैं मौन का पक्षधर हूं लेकिन जरूरत पड़े सत्य बोलना मौन से भी ज्यादा अच्छा है। और वो सत्य भी प्रिय सत्य बोलना इससे ज्यादा अच्छा है। आप कहे तो एक शे'र कहूं -

सच बोलता हूं तो मेरे घर पे आते है पत्थर।
चूप रहता हूं तो मैं हो जाता हूं पत्थर ।

मौन से सत्य अच्छा है। सत्य से प्रिय सत्य अच्छा है। ऋषिओं ने नाद किया। मंगलाचरण काश हम कर सके।

तो, मेरे भाई-बहन! मैं मानव को डायरेक्ट भगवान मानता हूं। उसके अंदर बैठा हुआ मैंने नहीं देखा। और कभी अवसर मिले तो 'श्रीमद् भागवत' लेकर पढ़िएगा। भगवान का शरीर नहीं होता, वह निराकार है। लेकिन भगवान का शरीर कहां-कहां है वो 'भागवत' में भगवान शुकदेव ने एक लिस्ट दिया है। आकाश भगवान का अंग है। वायु भगवान का अंग है। कहां खोज़ते हो भगवानों को? हम जिसको पाने जाते हैं, हम खुद वो ही होते हैं। जल परमात्मा का शरीर है। कहां जाते हैं हम? और कभी-कभी लोग 'भगवान' शब्द के साथ विवाद पैदा करते हैं तो करुणा आती है! यहां सब भगवान है। नदी-पर्वत भगवान है। प्रसन्नता के लिए मौसम की जरूरत नहीं है, मन की जरूरत है। मैं फिर कहूं, एक पेड गुरु बन सकता है। सवाल है मंगलाचरण का। हमारे और आप के जीवन में गुरु के चरण की महिमा है और गुरु को भी अपने चरण की ही महिमा होती है। श्रीमन् महाप्रभुजी वल्लभ की परंपरा में आश्रय का पद माना गया है -

भरोसो दृढ इन चरनन केरो।

तो, मेरे भाई-बहन! आप सब भगवान है। ये कोई भाषा का खेल नहीं है, मेरा भाव है। तुलसी की एक चौपाई भी यदि हम न समझ पाए तो फिर क्या? और जब सब ब्रह्ममय दिखने लगे तब किसकी निंदा करे? मेरे 'रामचरित मानस' में लिखा है -

निज प्रभुमय देखही जगत फिर केहि सन करहि विरोध।

कोई लाख निंदा करे तो करे, विरोध क्यों? भगवान रमण महर्षि एक बहुत प्यारी बात करते थे। आप को बल मिलेगा। एक साधक ने जाकर भगवान रमण महर्षि को कहा, 'माफ़ करिएगा, आप नहीं थे तब एक आदमी ने आप की बहुत निंदा की, हम से नहीं सहा जाएगा। और वो कायम सत्संग में आता है!' रमण ने कहा, 'मेरी गैरहाज़री में मेरी हत्या हो सकती है?' बोले, 'हत्या के लिए तो आप मौजूद होने चाहिए।' तो बोले, 'निंदा के लिए भी मैं मौजूद होना चाहिए।'

भरोसे के लिए मुझे जो समझ में आता है, जिस पर भरोसा करो उस पर मत देखो। अपने को देखो। जिसको किसीसे अनुशासित नहीं होना हो वो खुद अपने पर अनुशासन करे। अपने उपर देखो। बुद्धि तो तर्क करेगी। राजा मांडलिक ने कहा कि नरसैंया कहां का संत? अपने को देखो। मैं अपनी बात करूं। मैं द्वारिकाधीश का दर्शन करने जाता हूं, द्वारिकाधीश की मूर्ति तो किसी विशेष पथ्थर की ही होगी ना, लेकिन मेरी आंख में आंसू आते हैं। सवाल मेरा है, मूर्ति का नहीं। शून्य पालनपुरी का गुजराती में एक शे'र है -

छुं शून्य ए न भूल ओ अस्तित्वना प्रभु!
तुं तो हशे के केम, पण हुं तो जरूर छुं.

सवाल अपनी जगह से है। सूरदास ने इसीलिए कहा कि

मेरा भरोसा दृढ है। अमरमानी एक रचना मने बहु प्रिय छे-

में तो सिद्ध रे जाणीने तमने सेविया...

मूळ पाठ एवो छे। जब मैंने पहली बार ये पद सुना गोविंदराम बापु से, तो फिर मेरी मानसिकता के अनुसार मैं व्यक्तिगत रूप से 'सिद्ध' शब्द को एक ओर रखकर गाने लगा-

में तो शुद्ध रे जाणी ने तमने सेविया...

लेकिन फिर लक्ष्मणबापा ने उसका ओर पाठ किया! उसने क्या किया?

में तो शुद्ध रे हृदयथी तमने सेविया...

तू हो या न हो, मुझे कोई लेना-देना नहीं है, मैंने मेरी शुद्ध आस्था से तेरा सेवन किया। सवाल भरोसे की यात्रा का अपनी ओर से है। 'शुद्ध बुद्धिर्विमुक्तो नृपादोपद तुच्छबुद्धि।'-जगद्गुरु शंकराचार्य। मैं युवान भाई-बहनों को कहूं, शंकराचार्य भगवान का एक छोटा-सा स्तोत्र है, उसका नाम आज के युग के लिए बारहसौ-तेरहसौ साल पहले शंकर ने रखा है 'विज्ञाननौका।' जगद्गुरु कहते हैं, विज्ञान के स्टुडन्ट, विज्ञान भी तुम्हारी तारक बन सकती है। कोई भी विज्ञान लो, उसका अंतिम लक्ष्य क्या है? परम रहस्य की खोज। और परम रहस्य को 'उपनिषद' ने ब्रह्म कहा है। हां, गांधी बापू कहते थे कि संवेदना छोड़ दे तो विज्ञान पाप है। तीन वस्तु शंकराचार्य महाराज ने कही-तप, यज्ञ और दान से हे विज्ञान के छात्र, तू तेरी बुद्धि को शुद्ध कर।

अब ये युवानों के बारे में मैं बोलूं तो वो क्या तप करे? चारों ओर अग्नि जलाकर उसमें बैठ जाए? क्या वो उपवास करे? प्रासंगिक नहीं है। संशोधन आवश्यक है। क्या आज की युवानी को ये समझाया जाए? ये सब रामकथा है समझना। रामकथा केवल रामकथा में मर्यादित नहीं है; रामकथा ब्रह्मचरित्र तक विस्तरित है। 'राम ब्रह्म परमारथ रूपा।' तो, विज्ञान के छात्र जो है उसका तप क्या? आप का कोई मिशन हो, आप की कोई खोज हो उन पर आप लगातार बैठे रहते हैं और जब तक उनका निर्णय न आए तब तक खाना भूल जाते हैं वो आप की तपस्या है। विज्ञान का भी अंतिम लक्ष्य तो ब्रह्म ही है। विज्ञान परम रहस्य को खोजने के लिए निकला है और परम रहस्य का नाम है परमात्मा। 'रामचरित मानस' में शब्द है, 'ओरहु राम रहस्य अनेका।' क्या तप आपका? आप उपवास न करे लेकिन खाने योग्य खाए ये आपका तप है। आप अपने बाप की एक उम्र हो जाए तब उनके साथ मित्र बनकर जीओ ये तप है। मैं आप को ये कहूं कि आप सब भगवे कपड़ें पहन लो? मैंने तो अभी पहने नहीं, न पहननेवाला हूं। मांह्यलो भगवो होवो जोइए! इसका मतलब भगवे कपड़ें की आलोचना नहीं है। भगवा कपड़ा हमारी हिंदुस्तान की पहचान है। आप पढ़ते हैं, कोई चूक करे, आप के पिताने आप को पढ़ाया है, और शायद कभी थोड़ा गुस्सा करे उसी समय तुम मुस्कुराते हुए सह लो, ये तप है।

यज्ञ? आहुति दो। विज्ञान कभी एकदेशीय नहीं होता। जो खोजेंगे उसका ही स्वार्थ नहीं सधेगा, पूरी दुनिया का स्वार्थ सधेगा। कोई आदमी पानी का सूत्र शोधे तो वो उनकी ही मालिकी का नहीं होता, पूरा जगत का होता है। ब्रह्म विज्ञान का आखिरी रहस्य है। स्तोत्र का नाम याद रखिएगा, 'विज्ञाननौका।' शंकराचार्य भगवान दो प्रकार की बुद्धि की बात करते हैं - शुद्धबुद्धि और तुच्छबुद्धि। दो प्रकार की बुद्धि का वर्णन इस 'विज्ञाननौका' में है। मेरी शुद्धि का बदला कोई राजपाट दे दे तो भी 'परित्यज्य।' यज्ञ करना। यज्ञ करना मतलब? आप पढ़ो, स्वाध्याय करो, सब करो, आराम करो, मौज करो, फिलम देखो; लेकिन ये सब करते-करते कोई काम नहीं है ऐसे समय अपने इष्टदेव का नाम जपो वो यज्ञ है। मैं नहीं कहता, 'यज्ञानाम् जपयज्ञोऽस्मि।' यज्ञ में मेरा नाम का कोई जप करे वो यज्ञ है।

तो, बाप! जब अवसर मिले पांच मिनट उसी समय हरि को पुकारो। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने कहा, आदमी को चाहिए व्यर्थ काल न बिताए। यही यज्ञ है। तप, यज्ञ और दान। तुम पढ़े हो, कुछ अच्छा जाना है उसका दान करो। और 'विज्ञाननौका' में शंकराचार्य कहते हैं इसी तरह तीन प्रकार से युवक की बुद्धि विज्ञान के लिए तैयार हो जाएगी। न अर्थ की परवा, न उद्देश की परवा। तो, तप-यज्ञ-ज्ञान से 'शुद्ध बुद्धिर्विमुक्तो।' किस के लिए? 'नृपादोपदम्।' कोई पदवी-प्रतिष्ठा का मोह मत रखना। मिले तो ठाकुर का प्रसाद।

तो, विज्ञान भी कहता है, इस आखिरी परम रहस्य की ओर जाना है। आखिर में तो एक ही मात्र तत्त्व है। कोई उसे ब्रह्म कहे, परमात्मा कहे। मेरे पास आज जो प्रश्न है वो ये है, 'बापू! परमात्मा, ईश्वर, प्रभु, भगवान- इनमें आप को क्या पसंद है?' परमात्मा। तीन श्रेणी है- जीवात्मा, महात्मा, परमात्मा। हम सब जीवात्मा है। इनमें से कोई गांधी महात्मा है। उसके बाद परमात्मा। ब्रह्म, उपनिषदों का परम रहस्य है। राम को भी ब्रह्म कहते हैं। ईश्वर उसको कहते हैं, मेरी समझ में, जिसके हम अंश है। प्रभु उसको कहते हैं, 'प्रभु समरथ,' सब कुछ करने में जो समरथ है वो हमारे यहां प्रभु है। भगवान की तो व्याख्या चल ही रही है।

आपने पूछा कि आप को क्या पसंद है? सब अद्भुत है, लेकिन अब मेरे पर चुनाव की बात आई है, तो मैं इन सब को प्रणाम करते-करते कहूं, मेरी निष्ठा परमतत्त्व पर है। और वो परमतत्त्व क्या है? 'नास्ति तत्त्वं गुरुं परम्।' और गुरु मानी कोई व्यक्ति नहीं, प्रवाह। ये मेरा व्यक्तिगत मंतव्य है। ये मैं मानता हूं इसलिए आप भी मानने लगे ऐसा मेरा कोई कहना नहीं है। मुझे कोई कहे कि तुम आप के गुरु को भूल जाओ और ईश्वर आपको मिले; तो मैं कहूं, ईश्वर को कहो, कहीं छुट्टी पर चला जाए! 'रामचरित मानस' में लिखा है, 'सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के।' 'रामचरित मानस' सद्गुरु है ऐसा लिखा है। मैं खूली अदालत में बोल रहा हूं, मुझे राम भगवान आकर कहे कि 'रामायण' छोड़ दे, तो मैं कहूंगा, आप साकेत सिधाओ। मेरे गुरु ये ('रामायण') है। अच्छी किताब गुरु बन सकती है।

तो, 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति', इस न्याय से बिलग-बिलग एन्गल से सब देखा गया है। तो, विज्ञान का अंतिम लक्ष्य भी तो परम रहस्य की खोज़ है। वाल्मीकि वैज्ञानिक है। कुंभज वैज्ञानिक है। 'बालमीक बिग्यान बिसारद।' और तुलसीदासजी कहते हैं, 'ज्ञानि ते मोहि प्रिय विज्ञान।' 'ज्ञानी से मुझे वैज्ञानिक ज्यादा प्रिय

> मेरी समझ में नहीं आता, 'ब्रह्म सब में है।' ऐसे बोलनेवाले वेदान्ती लोग दशरथ के बेटे में ब्रह्म नहीं देखते! अभी हमारे यहां एक पर्व चल रहा था तो एक विद्वान ने कहा कि गांधीजी का राम दशरथ का बेटा नहीं है। भाई, गांधीजी का राम भी पहले दशरथ का बेटा ही था। ये तो डेवलप हुआ। और ये तो सब में होना चाहिए। स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा मानव स्वभाव है। मानव स्वभाव आप को स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले ही जाएगा। एक उम्र होगी तो आप धीरे-धीरे अपने गहनें कम कर दोगे।

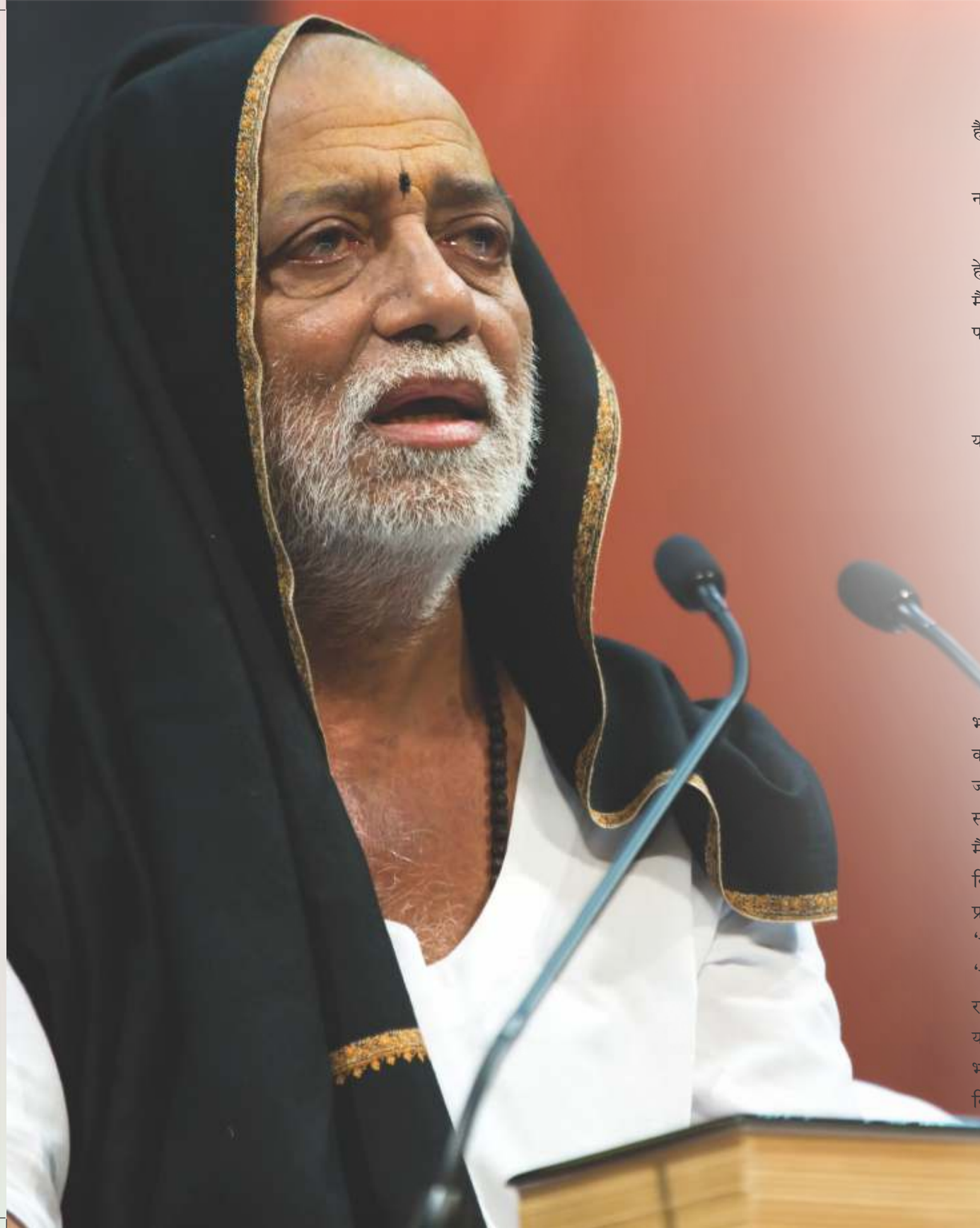

है।' जिसने कुछ रहस्यों को प्रमाणित कर दिया।

तो, कथा-सत्संग ये कोई पीटी-पीटाई बात नहीं है, ये बहती-सी गंगा है। तो,

में तो शुद्ध रे हृदय थी तमने सेविया...

हे गुरु, तू सिद्ध हो न हो मुबारक; शुद्ध हो न हो मुबारक; मैंने शुद्ध भावना से तुझे सेया है। आंसू मेरे हैं, तू भले पथ्थर हो। तो,

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।

यहां 'भगवान' शब्द की व्याख्या है।

आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ।
असि सब भाँति अलौकिक करनी ।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ।।

भगवान की एक ओर सरल समझ देते हुए भगवान शिव बोले हैं पार्वती के सन्मुख। जब पार्वती ने कहा कि 'रामतत्त्व क्या है? क्या मैंने जिस रामजी को जानकी के वियोग में देखा वो राम ब्रह्म तत्त्व है? ब्रह्म तो सत्-चित्-आनंद रूप माना है। और जिस रूप में राम को मैंने देखा वहां कोई सत् नहीं देखा मैंने! क्योंकि संयोग-वियोग तो आखिर में असत् है। और चित्त का एक धर्म है प्रसन्नता। हमारे चित्त में भ्रम हो जाए, शब्द बना 'चित्तभ्रम।' हमारे चित्त में विक्षेप हो जाए तो शब्द बना 'चित्तविक्षेप।' लेकिन असल में चित्त का स्वभाव है प्रसन्न रहना। चित्त प्रसन्न न रहे तो समझना, धर्मान्तर हुआ है। यदि हमारा चित्त, चित्त है तो हम प्रसन्न होने ही चाहिए। भारतीय ऋषिओं के मनोविज्ञान ने चित्त पर बहुत काम किया। जगद्गुरु शंकराचार्य ने कहा है कि तुम प्रसन्नचित्त हो तो तुम परमात्मा के दर्शन के अधिकारी हो। हम प्रसन्नचित्त नहीं रह सकते इसलिए भगवान से दूर है।

तो, पार्वती ने ये प्रश्न पूछा है शिवजी से, 'राम क्यों रो रहे हैं? मैंने जो रोते देखा वो राम परमतत्त्व है? तो, रामतत्त्व क्या है ये मुझे बताईए।' अच्छा प्रश्नोपनिषद है। ये अधिकार है पूछना। जब तक समझ में न आए, एक विवेक से पूछते रहना चाहिए। 'प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।' पार्वती पूछती है। धर्मजगत ने एक समय में ऐसा एक सिद्धांत थोप दिया कि सुनो, पूछो नहीं! हमारे यहां पूरे उपनिषद प्रश्नोत्तर में है। 'रामचरित मानस' के चारों संवाद प्रश्न का समाधान है। तो, पार्वती पूछती है कि रामतत्त्व क्या है? भगवान शंकर उसके बारे में बहुत बोलते हैं। लेकिन ये बीचवाला टुकड़ा है कि वहां 'भगवान' किसको कहे ये आता है तब इतनी पंक्तियां लिखी है कि वेद जिसको इस तरह गाते हैं, मुनि जिसका ध्यान करते हैं, ये दशरथ का सुत है। अब, मेरी समझ में नहीं आता, 'ब्रह्म सब में है।' ऐसे बोलनेवाले वेदांती लोग दशरथ के बेटे में ब्रह्म नहीं देखते! मैं समझ नहीं सकता!

अभी हमारे यहां एक पर्व चल रहा था तो एक विद्वान ने कहा कि गांधीजी का राम दशरथ का बेटा नहीं है। भाई, गांधीजी का राम भी पहले दशरथ का बेटा ही था। ये तो डेवलप हुआ। और ये तो सब में होना चाहिए। स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा मानव स्वभाव है। मानव स्वभाव आप को स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले ही जाएगा। एक उम्र होगी तो आप धीरे-धीरे अपने गहनें कम कर दोगे।

तो, रामतत्त्व क्या है, वो पार्वती पूछती है। मेरी समझ में वो योग्य है, पूछना चाहिए। हा, उपनिषद में एक बात आती है, अति प्रश्न मत करो। पूछने की छूट है लेकिन विनय से। पार्वती पूछती है। तो, भगवान शंकर जिस राम को निरंतर जपते हैं, 'संतत जपत संभु

अविनासी।' अखंड रूप से जो राम को जपते हैं। वैसे शंकर अविनाशी है, विनाशी नहीं है। अविनाशी होकर भजते हैं। शंकर भगवान है, फिर भी जपते हैं राम। तो, उसके पास पूर्णत: जानकारी है इसीलिए पार्वती के पूछने पर उसने कहा जो बिना पैर चलता है वो भगवान है। अब, कैसे समझें? एक संत से मैंने सुना था कि 'पद' मानी केवल पैर नहीं, 'पद' मानी कोई पद-पतिष्ठा। विश्व में भगवान वो है जिसको कोई पद और प्रतिष्ठा की पड़ी नहीं है। बिना 'वाह-वाह' जो आदमी चलता रहता है वो आदमी भगवान है।

जो कान बिना सुन ले वो भगवान। कान तो कितना सुन सकता है? कान की मर्यादा है। भगवान बिना कान से सुनता है, मतलब भगवान हमारे दिल की धड़कनों को दिल की धड़कनों से सुनता है। और कान से सुने और दिल में कोई असर नहीं तो वो भगवता नहीं है। दिल से सुनता है परमात्मा। मूर्ति में तो कितने सुंदर कान होते हैं! बुद्ध की मूर्ति में तो बहुत बड़े-बड़े कान बताते हैं। इसका मतलब है कि मूर्ति कानों से नहीं सुनती, मूर्ति में स्थापित की गई भगवता दिल की धड़कनों से सुनती है। आप ने किसी ने कान पर आकर बात नहीं की और आप को अंदर से रात को सोते-सोते लगा कि ऐसा अचानक विचार क्यों आ रहा है, उसको कोई तकलीफ तो नहीं है? और फिर सुबह आप उसके काम के लिए निकल पड़ो, हकीकत में तकलीफ हो और तुम सहायक बनो, तो समझो तुम भगवान हो, क्योंकि 'सुनई बिनु काना।' 'कर बिनु कर्म करे विधि नाना।' भगवान वो है जो हाथ के बिना कर्म करे। केवल संकेत से कर्म करे, संकल्प से कर्म करे। जिसका होना काफ़ी है। ऊर्दू में 'करम' मानी कृपा। हाथ से मदद करने न आए लेकिन बैठा-बैठा करुणा ऐसी करे कि हमारा काम चुटकी बजाते हो जाए! जिसकी करुणा सब कुछ काम कर दे। मैं एक सूत्र के रूप में बोलता रहता हूं, देहशत से कुछ नहीं होता, मेहनत से कुछ-कुछ होता है लेकिन किसी की रेहमत से सब कुछ होता है।

आनन रहित सकल रस भोगी।

भूख के बिना सब कुछ रस भोगता है। उसको फल नहीं चाहिए, रस चाहिए-वो भगवान है।

बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी।

बानी नहीं, जबान नहीं फिर भी बिना जुबान बहुत बड़ा समर्थ वक्ता है। बोलना न पड़े और सब से बड़ा वक्ता। कभी मेघ की गर्जना में बोलता है, कभी कोकिल की कुहुकार में बोलता है। परम वक्ता है।

'तन बिनु परस।' बिना शरीर छुता है वो भगवान है। इन्द्रियों से न छूए लेकिन महसूस कराए। एक हृदय में भाव का सर्जन करे। 'नयन बिनु देखा।' बिना नेत्र देखता है। फिर मैं कहूं कि आंखों से देखना मर्यादा है। लेकिन भगवान वो है कि बिना आंखें वो देखता है। ज्यादातर सिद्ध होगा कि जिसको जनम से आंख नहीं है वो हम से ज्यादा जानते हैं। परमात्मा बिना आंख हमें देखता है, कोई गेब से हम सब को देखता है। 'श्रीमद्भागवतजी' में आया है कि हमारे प्रत्येक कर्म को इतने पदार्थ से परमात्मा देखता है। इतने पदार्थ की साक्षी से हम कर्म कर रहे हैं।

'ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।' बिना घ्राणेन्द्रिय वो खुश्बू ग्रहण करता है। 'असि सब भाँति अलौकिक करनी।' लौकिक जगत में रहते हमें लगे कि उसकी प्रत्येक क्रिया लौकिकता की बदबू से दूर है। जिसकी महिमा अमित है। शंकर कहते हैं, 'जिसको वेद इस रूप में गाते हैं, हे पार्वती! वो ही दशरथसुत कौशलपति भगवान है।'

तो, भगवान की व्याख्या इस तरह भी 'रामचरित मानस' में आई है। भगवान के बारे में हम साथ में मिलकर कल ओर संवाद करेंगे।

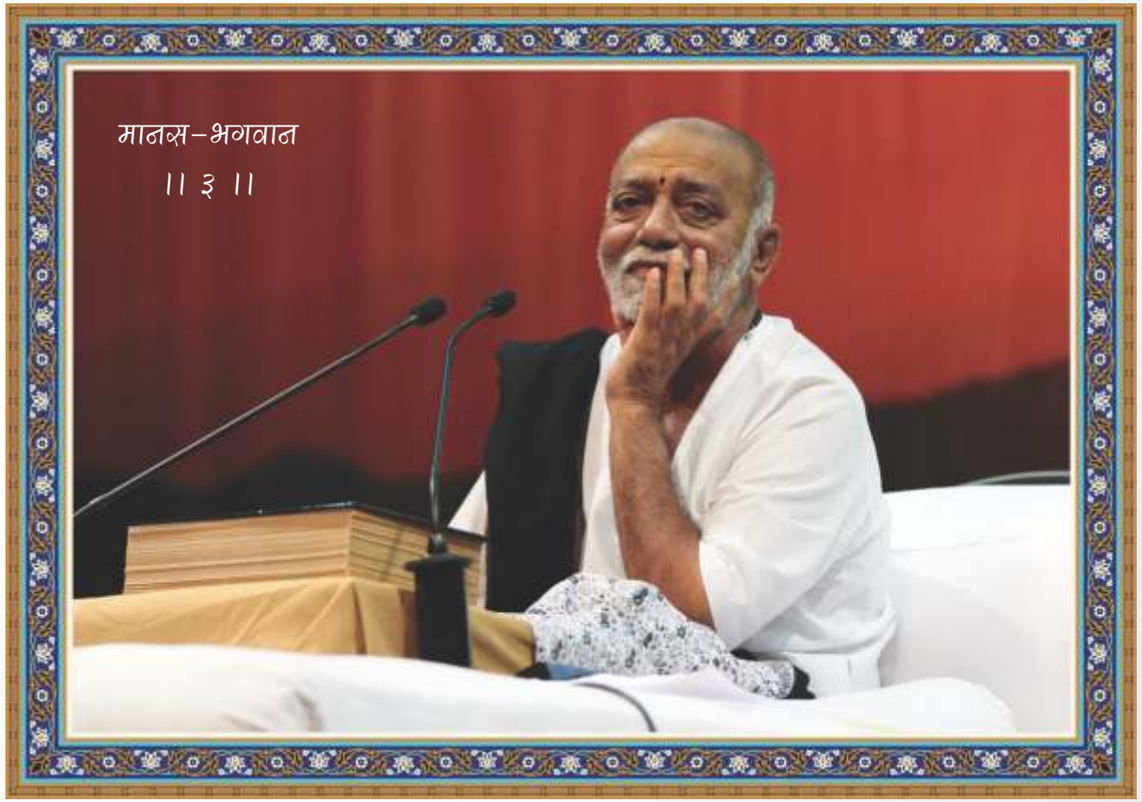

संत, शायर और फ़कीर किसीका द्रोह नहीं करता, लेकिन सविनय विद्रोह करता है

कल सायंकाल को हम मिले, आनंद आया। रोहित ने 'विनय' का पद गाकर सुनाया। फिर सब ने अपना-अपना भाव प्रस्तुत किया। भारतीय सनातन और शाश्वत व्यासपीठ के बारे में कुछ निरीक्षण प्रस्तुत हुआ आदरणीय सुमनभाई शाह द्वारा। फ्रेंक ने गाया; आनंद आया। अब आगे बढ़ें।

'भागवत' में भगवान के दो लक्षण बताए गए हैं। वैसे बहुत प्रसिद्ध छ: लक्षण है, ऐश्वर्य है। 'भग'; 'भग' मानी ऐश्वर्य। लेकिन 'भागवत' में दो लक्षण है, 'प्रपन्नार्तिहरो हरि:।' परमहंस शुकदेव के शब्द है। भगवान के दो लक्षण, एक हर और दूसरा हरि। और हमने भी यहां हर और हरि की चौपाई ली है। प्रसंग की पृष्ठभूमि समझ लीज़िए। 'श्रीमद् भागवत' का बहुत प्यारा प्रसंग। जहां ये भगवान का दर्शन शुक्राचार्यजी ने करवाया है। जरा भी इधर-उधर किए बिना। वो मथुरा की हवेली। कंस निर्वाण के बाद जहां कृष्ण मथुरा में हैं। और उसको व्रज की याद आती है। गाय, माँ, नंद, सखा, सखी, वो कालिन्दी, वृन्दावन, जहां कृष्ण ऐश्वर्यमुक्त जीये थे। वो सब स्मृति में आ रहा था। यद्यपि 'भागवत' मेरा विषय नहीं, विश्वास है। याद आई। मुझे हरीन्द्रभाई दवे याद आते हैं -

आ एज हशे वृंदावन?
एक समे ज्यां कृष्ण राधिका
करतां आवन-जावन?

'इति संस्मृत्य संस्मृत्य।' अद्‌भुत शास्त्र है 'श्रीमद् भागवत।' अब, संदेश भेजना है व्रज। देखो, यहां मनुष भगवान की चर्चा है। वो षड़ैश्वर्यवाली बात बाद में करें, जो 'विष्णुपुराण' का मंत्र है। यद्यपि अन्यान्य ग्रंथों में ये सब बातें मिल जाती है। और बाप, शास्त्र सुनो तो रिक्तचित्त से सुनना। एक शे'र कहूं -

कभी तूफ़ां कभी कश्ति कभी मज़धार से यारी।
किसी दिन लेके डूबेगी तेरी ये सभी होंशियारी।

-मासुम गाज़ियाबादी

हम कितने भटके हुए हैं! तेरी होशियारी तुझे डूबो देगी। कल आदरणीय सुमनभाई 'विझड़म' शब्द का प्रयोग कर रहे थे। बहुत पवित्र शब्द लगता है मुझे 'विझड़म।' नोट इन्फर्मेशन, केवल बोध। बुद्ध ने कहा, मैं बुद्ध नहीं हूं, मैं बोध हूं। क्या हम ये नहीं कह सकते कि हम मनुष्य है? क्या इतनी परख काफ़ी नहीं है? लेकिन हमें खबर नहीं, अपनी होशियारी से क्या-क्या होना है! एक ओर शे'र सुनिए -

आवामी गीत है मेरे मेरी बागी गुलुकारी।
मुझे क्या दाद देगा ये जो सुने केवल राग दरबारी।

शायर कहता है, मेरे गीत आवामी गीत है, विद्रोही गुलुकारी है। संत, शायर और फ़कीर किसी का द्रोह नहीं करता, लेकिन पीटीपिटाई परंपरा पर सविनय विद्रोह करता है। द्रोह करे वो साधु कौन-सा? जो केवल प्रशंसा के आदती है वो मुझे क्या दाद देंगे? तो, बाप! चलिए, मेरी व्यासपीठ के संग वृंदावन।

फूल कहे भमराने, भमरो वात वहे गुंजनमां:
माधव क्यांय नथी मधुवनमां...

'श्रीमद् भागवत' में भी एक श्लोक है -

तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित्
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरि:।

क्या श्लोक है! कानों में अमृत घोल देता है। कृष्ण ने उद्धव का हाथ पकड़ा, 'आज कोई नहीं है, ये हवेली है।' और दुनिया में कुछ प्रासाद होते हैं, कुछ महल होते हैं, कुछ हवेली होती है, कुछ घर होते हैं, कुछ आश्रम होते हैं। रहने के इतने तो ठिकाने हैं। आज एकान्त मिला था। मुझे ये दृश्य प्यारा लगता है। ये हमारा देश बड़ा प्यारा है। यहां मित्र मित्र का हाथ पकड़ता है; माँ बच्चे का हाथ पकड़ती है। हाथ मिलाने का मतलब है कि जो अब मैं नहीं कर सकुंगा वो अब तू कर ले। कृष्ण यहां ऐश्वर्यमुक्त भगवान है। हमारी संवेदनाओं को लिए हुए कृष्ण है।

क्यों उद्धव को पसंद किया? उद्धव में तीन वस्तु है। शुकदेवजी कहते हैं, प्रेष्ठम्, भक्तमेकान्तेनम् और क्वचिद्। जिनमें तीन वस्तुएं होती है उसका भगवान हाथ पकड़ता है। हाथ है प्रतीक। हम चाहते रहते हैं कि किसी बुद्धपुरुष के चरणों पर हमारा हाथ हो पर हमारे सिर पर बुद्धपुरुष का हाथ हो।

'अयम् मे हस्तो भगवान् अयम् मे भगवत्तर:।'

श्रुति भगवती कहती है ये हाथ की महिमा। 'प्रेष्ठ' का अर्थ आचार्यों ने किया है, प्रेष्ठ मानी प्रेमी नहीं, प्रियतम। आशिक नहीं, मासूक। उद्धव को कृष्ण आज प्रियतम कहते हैं। यहां भगवान छोटा है और जिसका हाथ भगवान ने पकड़ा है वो बड़ा है। जब हम ऐसा जीएंगे तो कभी भगवान हमारा हाथ पकड़ेंगे। क्या महसूस किया होगा धनंज़य ने जब कृष्ण ने 'गीता' में कहा होगा, 'इष्टोऽति मे', तू मेरा इष्ट है। कल्पना तो करो, कितनी महिमा है आदमी की! हम क्यों आदमी की महिमा को भूले हुए हैं? मेरा तो एक मंतव्य सदा रहा कि किसी भी इन्सान को उनकी समस्त कमज़ोरियों के साथ स्वीकारो। इन्सान है। हमारे जयन्त पाठकबापा ने तो बहुत सरल भाषा में लिखा था-

दडदड दडदड दडी पडे भै, माणस छे।
रमतां रमतां लडी पडे भै, माणस छे।

क्यों हम इन्सान को उनकी कमज़ोरियों के साथ भज नहीं सकते? मैं जब आप को 'भगवान' कहता हूं तब क्या हम में कमज़ोरियां नहीं है? पूर्ण केवल परमात्मा है। और क्यों शरमिंदा हैं हम? जहां सूर, तुलसी इतने-इतने बड़े बुद्धपुरुषों ने अपने दिल की किताबें खोल दी-

मो सम कौन कुटिल खल कामी।

छोड़ो होशियारी! दीक्षित दनकौरी ने एक गज़ल लिखी, उसका एक शे'र है-

या तो कुबूल कर मुझे कमज़ोरियों के साथ।
या छोड दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ ।

तो, आदमी को उनकी कमज़ोरियों के साथ स्वीकार करो, ये भगवान है। यहां भगवान को कोई ऐश्वर्य नहीं है। यहां उद्धव प्रेष्ठम् है। तीन लक्षण। हम अच्छा भाव तो बनाये कि हम ऐसे हो; न हो पाये तो कोई चिंता नहीं।

मुझे कल रात एक चिठ्ठी मिली कि 'बापू, आप अंग्रेजी में बोलते होते तो कितना अच्छा होता! क्योंकि आप के वचन हम पकड़ नहीं पा रहे।' मेरे वचन को मत पकड़ो, मेरे नयन को पकड़ो। वचन की सीमा है, नज़र की कोई सीमा नहीं। क्या निगाहें काफ़ी नहीं है? और जो नयन समझ लेता है; परीक्षित मरने की कनारे पर बैठा है, कितने वचन शुक के सुने होंगे उन्हें? सात दिन में तो खेल खतम है! लेकिन मुझे तो लगता है, ये अलक्ष्य लिंग की निगाहें देखता रहा होगा। कृपादृष्टि का मतलब क्या है? एक निगाह। साधक की सुबह तो उनके गुरु की आंखों से होती है।

'तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रखा क्या है?'

मैं अंग्रेजी नहीं बोल पाता उसका मुझे कोई रंज नहीं है। व्यासपीठ की असली भाषा तो मौन है। तुलसीदासजी ने क्या लिखा? 'रामनाम गुन गाई के भयो चहत अब मौन।' क्योंकि आदमी की असली भाषा मौन है। और निगाहें मौन रहते हुए बहुत बोलती है। चिन्ता न करे, कभी भी हो; लेकिन हम ऐसा एक वैष्णवी मनोरथ तो करें कि कभी परमात्मा हमारा हाथ पकड़े और कहे 'प्रेष्ठम्।'

तो, दूसरा लक्षण उद्धव का; उद्धव भक्त है। आज भगवान को भक्त का काम पड़ा है। पूजनीय ब्रह्मलीन पांडुरंग दादा कहा करते थे कि जो विभक्त नहीं है, वो भक्त है। बड़ा प्यारा शब्द है। लोग जरा आलोचना के रूप में भी बोलते हैं कि 'भगत' है! हो कर तो बताओ! गुजराती में एक भजन है-

नथी रे मफतमां मळतां,
एनां मूल चूकववां पडतां.
संतने संतपणां रे मनवा,
नथी मफतमां मळतां...

कृष्ण इसलिए उद्धव का हाथ पकड़ रहे हैं कि तू प्रेष्ठ है, भक्त है। तीसरा सम्मान है, 'एकान्तिना।' कृष्ण को कौन प्यारा है? जो एकान्तिन है। एकान्त का अर्थ भीड़ में न रहे ऐसी बात नहीं, सब में होते हुए बिलकुल एक का भी जिसने अन्त कर दिया है। एक है एकाग्रता और एक है एकान्त। दोनों की अर्थछाया भिन्न है। एकाग्र का अर्थ होता है, जहां एक की अग्रता अभी है, अभी कोई मौजूद है। दूसरा न हो तो वो खुद है, कोई 'मैं' वहां मौजूद है। एकान्त का अर्थ है, जहां एक का भी अन्त हो गया; कुछ नहीं बचा। कृष्ण ऐसे भक्त का हाथ पकड़ते

हैं, जो एकान्तिन है। ऐसे भक्त का एक ही भाव होता है कि बस, तू। उद्धव ऐसा है। मेरे भाई-बहन, भगवान वो है जो हमारा हाथ पकड़े, लेकिन हमारा हाथ भगवान तब पकड़ेगा जब हम कुछ ऐसे भाव रखे। बस, हम थोड़ा डेवलप हो।

यहां भगवान के दो लक्षण बताए गए, हर और हरि। मैंने आचार्यों से सुना है, 'हर' का मतलब संतों ने बताया, हर मानी जो हमारी पीड़ा हर लेता है। कौन भगवान? जो हमारी पीड़ा हर ले। हमारा दु:ख जो हर ले वो 'हर' और जो हमारा सुख भी हर ले वो 'हरि।' अब हम ऐसे भगवान को क्यों भजें जो हमारे सुख को भी हर ले? हमें तो धर्मजगत ने बहुत प्रलोभन दिए हैं कि सुख मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा! स्वर्ग की व्याख्या समझ लो, जिस जगह पर जाने के बाद आप की संसार से कोई मांग न बचे वो स्वर्ग है।

मेरे युवान भाई-बहन, मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं, हर और हरि। भगवान के दो लक्षण। हर का अर्थ है, जो हमारा दु:ख हर लेता है और हरि का अर्थ है जो हमारा सुख भी हर लेता है। लेकिन फिर संतों ने क्या कहा कि दु:ख हरकर भगवान जला देता है, फिर वो दु:ख हमारे जीवन में आए ना। और हमारा सुख हरन करके अपने पास रख लेता है और साधक को जितने सुख की जरूरत पड़ती है उतना देता है। ये अर्थ मुझे निकट पडता है। माँ दूध का स्टोल बच्चे के पास नहीं कर देती।

आज मेरे पास चिठ्ठी है कि बापू, 'महाभारत' का थोड़ा स्पर्श कीजिएगा। 'महाभारत' के सभी प्रसंग, क्या कहूं? मुझे यदि आपके सामने 'महाभारत' का कोई प्रसंग रखना है तो कई रख सकता हूं। लेकिन उनमें एक प्रसंग वो भी समाया हुआ है जब कृष्ण दूतकर्म करने के लिए धृतराष्ट्र की सभा में गए। क्या सभा थी! कृष्ण धृतराष्ट्र की सभा में संभाषण करनेवाले हैं। हिमालय में दश-दश हजार साल की समाधि में बैठे थे उन्होंने समाधि छोड़ दी कृष्णवचन सुनने के लिए! और कृष्ण जानते थे कि मेरा दूतकर्म सफल नहीं होगा क्योंकि आदमी कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो, ज्ञानवान क्यों न हो, लेकिन जिनका चित्त शत-प्रतिशत काम-क्रोध-लोभ में डूब गया है वहां भजनानंदी सफल हो नहीं सकता।

और ये मंजर देखो! यहां जो दुर्योधन ने स्वागत की तैयारी की! प्रलोभन थे, चाल थी। भगवान कृष्ण आते हैं और स्वागत होता है। भोजन की तैयारी। और मुझे ये बहुत अच्छा लगता है कि कृष्ण ने दुर्योधन के भोजन को ठुकरा दिया। कृष्ण विदुर के वहां जाते हैं। रातभर चर्चा हुई विदुर के साथ। विदुर कृष्ण से कहता है, 'गोविंद, मुझे नहीं लगता कि दुर्योधन माने।' 'चाचा, मुझे पता है। ये आदमी द्वेष कर रहा है। लेकिन भविष्य में कोई कह न सके कि कृष्ण ने पक्षपात किया। मैं पूरे दिल से आया हूं उसको समझाने।'

मेरे युवान भाई-बहन, आप के पास भगवानदत्त कोई क्षमता हो तो कोई माने न माने, मेसेज़ देते-देते जाना। मासुम गाजियाबादी का एक शे'र सुनाऊं-

जो सीखा है किसी मासुम को दे दो तो अच्छा है।

सिरहाना कब्र के रोया करेगी वर्ना फ़नकारी।

कब्र के तकिये पर सिर रखकर तेरी कला सिसकी भरेगी कि तूने किसीको दिया नहीं!

कृष्ण चाहते थे कि मैं मेरा धर्म निभाऊं। रातभर चर्चा हुई। दूसरे दिन सभा में जाना है। व्यास, व्यास है। घोड़े मना कर रहे हैं कि इस सभा में हम को मत ले जाओ। जहां धर्म नहीं वहां पशु मना करते हैं। रथ धृतराष्ट्र की सभा में पहूंचता है। स्वागत होता है। साहब, कोई विवेक सीखे इस मानव भगवान से। कृष्ण के लिए एक विशिष्ट आसन था, एक राजकीय शिष्टाचार। कृष्ण बैठे नहीं। कृष्ण भीष्म के पास गए, 'दादा, प्रणाम।' विवेक तो सीखो! 'दादा, पहले ये ऋषिमुनिओं को बिठाया जाए, बाद में मैं बैठुंगा।' जो विद्या विवेक पैदा न कर सके वो केवल श्रम है। धृतादि को प्रणाम कर मेरा गोविंद बैठ जाता है। वो ही त्रिभुवनमोहित स्मित! और व्यासजी दो वस्तु मार्क करते हैं कि सभा ने क्या देखा? कृष्ण के दांत देखे। ये दंतकृपा है! एक तो दांत देखे। व्यास ने मार्क किया कि आदमी अंदर से बहुत

पीडित है। और आप ने 'महाभारत' ठीक से पढ़ा हो तो, कर्ण भी आर्षवाणी बोलता है। कृष्ण से कहता है, 'मुझे एक सपना आया, गोविंद! कौरवों का नाश होनेवाला है। लेकिन मैं मित्रधर्म त्याग नहीं सकता।' मैं थोड़ा कर्णपक्षपाती हूं। 'महाभारत' से मैंने पांच पात्र उठाए हैं- कृष्ण, कौंतेय, कृष्णा, कुन्ता, कर्ण।

सब ने आसन ग्रहण किया। और कृष्ण क्या बोलेगा वो सुनने के लिए सब के कान एकदम लालायित है। मुझे आखिर में इतना ही कहना है कि दुर्योधन अपनी मूढ़ता छोड नहीं पाया! एक वस्तु याद रखना युवान भाई-बहन, अहंता के बेटे का नाम है मूढ़ता। 'अहंकारविमूढ़ात्मा।' अहंकारी आदमी में मूढ़ता आ ही जाती है। दुर्योधन मूढ़ है। आप जानते हैं सूई की नोंक रहे इतनी भी जमीन युद्ध के बिना देने का इन्कार कर दिया! भगवान कृष्ण को तो पता है और चाल समझ गए कि कृष्ण को बंदी बनाया जाय! दूत अवध्य है राजनीति में। राजनीति के पाठ 'महाभारत' से सीखो। राजनीति में जानेवाले का एक लक्षण ये बताया है कि वो किसी से डरे ना और किसी को डराए ना। सब सूत्र आज भी प्रासंगिक है, नितनूतन लगते। पांच हजार साल पहले फ्रीज में रखे हुए सूत्र है।

और कृष्ण को बांधने की कोशिश! ये भगवन् ने अब मानवपना थोड़ा हटाया। शास्त्र मनमुखी नहीं समझा जाता, शास्त्र गुरुमुखी समझा जाता है। जब चालबाज़ी अंतर्यामी कृष्ण ने जान ली तब मानवपना एक ओर हटा दिया और फिर विराटदर्शन करवाया! 'महाभारत' में दो बार विराटरूप के दर्शन है। एक बार युद्धनिवारण हेतु और एक बार युद्धहेतु। आज धृतराष्ट्र की सभा में कृष्णकृपापात्र दश-पंद्रह मुनि है, जो कृष्ण के ऐश्वर्य का दर्शन कर पाए। धृत तो कर ही नहीं सकता। कृष्ण को कौन बांध सकता है? उसको तो प्रेम बांध सकता, दुर्योधन खाख बांध सकेगा! 'काग' बापू की पंक्ति -

जेनी मोहजाळमां आखी दुनिया विंटाणी,
एनी काया आज तारी दोरडीए बंधाणी...

तो, विफल गया! यहां संधि विफल। और कृष्ण जब रथ में बैठकर दुर्योधन की सभा से प्रस्थान करते हैं तब भीष्म ने धृतराष्ट्र के सामने देखा, 'इस आदमी को कब अक्ल आएगी?' राजकीय अतिथि को बिदा देने के लिए कर्ण को भेजा गया। और कर्ण का हाथ पकड़कर अपने रथ में लेते हैं कृष्ण। कर्ण बोलता है, मैं आप के साथ ज्यादा बैठुंगा नहीं, क्योंकि मुझे डर है कि तेरे पास ज्यादा रहूंगा तो मेरी बुद्धि बदल जाएगी और मेरा मित्रधर्म नष्ट हो जाएगा! मेरा नाश कौंतेय के हाथ होना निश्चित है, लेकिन मैत्री के मूल्य का प्रश्न है। मैं क्यों कर्ण का पक्षपात करता हूं? कृष्ण भी खुश होते हैं। 'तू राधेय नहीं, कौंतेय है।' और आंख बदली! 'माफ करना कृष्ण! ये मेरा अपमान है। मुझे कौंतेय मत कहना, मैं राधेय हूं।' क्यों मैं पक्षपात न करूं? इस गौरव को सलाम!

तो, ये भगवान कृष्ण; मानवरूप में भगवान कृष्ण। आप कल्पना करो, वो अपने ऐश्वर्य से गोपीओं को तसल्ली दे सकता था लेकिन 'गृहीत्वा पाणिना पाणिं' 'नवनीत समर्पण' में एक लेख आया था। उसमें लेखक ने कृष्ण के आगे गोपी के मुख से बुलवाया था, 'हमने बहुत भूल की। आज हमें पता चला कि प्रेम तो मनुष्य से ही हो सकता है, भगवान से नहीं।'

तो, भगवान कृष्ण स्वयं मानवरूप में; और इस देश के मुनिओं ने इस भगवान को सोलह कला का अवतार कह दिया तो बहुत अच्छा किया। पूर्ण; यद्यपि कई लोग ये कहते हैं कि राम तो बारह कला के अवतार है! अरे भाई, दोनों एक ही है। पूर्णता तो एक ही है। ये क्या है? एक वस्तु याद रखना, आचार्यों से चले वो

संप्रदाय है, ईश्वर से जो चलता है वो धर्म है। संप्रदाय की मैं आलोचना नहीं करता। ईश्वर के वक्ष:स्थल से धर्म का जन्म होता है और पीठ से अधर्म पैदा होता है।

ये जो अति उत्तुंग भाव है, ये भाव जब हमारे और आप में डेवलप होगा, कभी भी हो, कोई चिन्ता नहीं, लेकिन ये भाव जब जगे तब भगवान जैसा भगवान भी 'गृहीत्वा पाणिना पाणिं' अपने आश्रित की आरति हरने में; मदद करेंगे जिसमें भगवान के दो लक्षण है 'हर' और 'हरि'-उसको 'श्रीमद् भागवत' भगवान कहते हैं।

तो, जिस पंक्ति का आश्रय इस कथा के लिए लिया गया, वहां लिखा है कि भगवान शिव सतत राम का नाम जपते हैं। चंद मिनट बाकी है तो कथा का क्रम भी ले लूं। पहले दिन हमने हनुमानजी की वंदना की थी। कथाप्रवाह में उसके बाद जो प्रकरण है वो नाम महिमा है। तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' लिखा; वैसे वो कहते हैं कि 'हरिचरित मानस तुम गावा।' और यहां नव दोहों में 'रामचरित मानस' की समांतर चलनेवाला 'नामचरित मानस' है। नाम की महिमा है।

मेरे भाई-बहन, प्रभु का नाम, अल्लाह का नाम, हरिनाम, जो कहना है वो कहो, तुलसीजी कहते हैं, मैं नाम को प्रणाम करता हूं। आप ध्यान करते हो तो करो, अवश्य। योग करो, लेकिन यदि कुछ आप के मन में न बैठे तो हरिनाम लो। नाम अनंत है। उसकी लीला-नाम-धाम-रूप अनंत है। और कलियुग में, मौसम के अनुकूल ऋषिओं ने साधना बताई। सतयुग में ध्यान सहज़ था, त्रेतायुग में बड़े-बड़े यज्ञ होते थे, द्वापर में पूजा और कलियुग में तुलसी कहते हैं -

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
राम नाम अवलंबन एकू।।

और योग-ध्यान-यज्ञ आदि किसी मास्टर से बराबर सीखकर करो, लेकिन त्रिगुणातीत श्रद्धा हो तो नाम लो। तुलसीदासजी ने लिखा है, हरिनाम भाव से, अभाव से, आलस से, अनख से, कैसे भी लो, नाम अनंत है। प्रभु का नाम। मुझे तो आप अपना नाम लो तो भी आपत्ति नहीं, हरेक नाम उनके ही है। ये जगद्गुरु रामानुजाचार्य का निवेदन है कि दुनिया में कोई भी चीज़ लो, उसका पहला अर्थ हरिनाम होता है। तुलसीदासजी का 'दोहावली रामायण' में एक दोहा है-

जथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास।
राम नाम सब धरममय जानत तुलसीदास।।

ये पृथ्वी बीजमय है। पहाड़ पर कौन खेती करने जाते हैं? बारिश होती है और पूरी धरती हरियाली हो जाती है; आकाश नक्षत्रमय है; वैसे सब धर्ममय है। अल्लाह, बुद्ध, महावीर, जिसस का नाम, सब धर्ममय है। तो, कोई भी नाम लो।

भगवान के दो लक्षण बताए गए, हर और हरि। 'हर' का मतलब संतों ने बताया, हर मानी जो हमारी पीड़ा हर लेता है। हमारा दु:ख जो हर ले वो 'हर' और जो हमारा सुख भी हर ले वो 'हरि।' अब हम ऐसे भगवान को क्यों भजें जो हमारे सुख को भी हर ले? हमें तो धर्मजगत ने बहुत प्रलोभन दिए हैं कि सुख मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा! लेकिन फिर संतों ने कहा कि दु:ख हरकर भगवान जला देता है, फिर वो दु:ख हमारे जीवन में आए ना। और हमारा सुख हरन करके अपने पास रख लेता है और साधक को जितने सुख की जरूरत पड़ती है उतना देता है। ये अर्थ मुझे निकट पड़ता है।

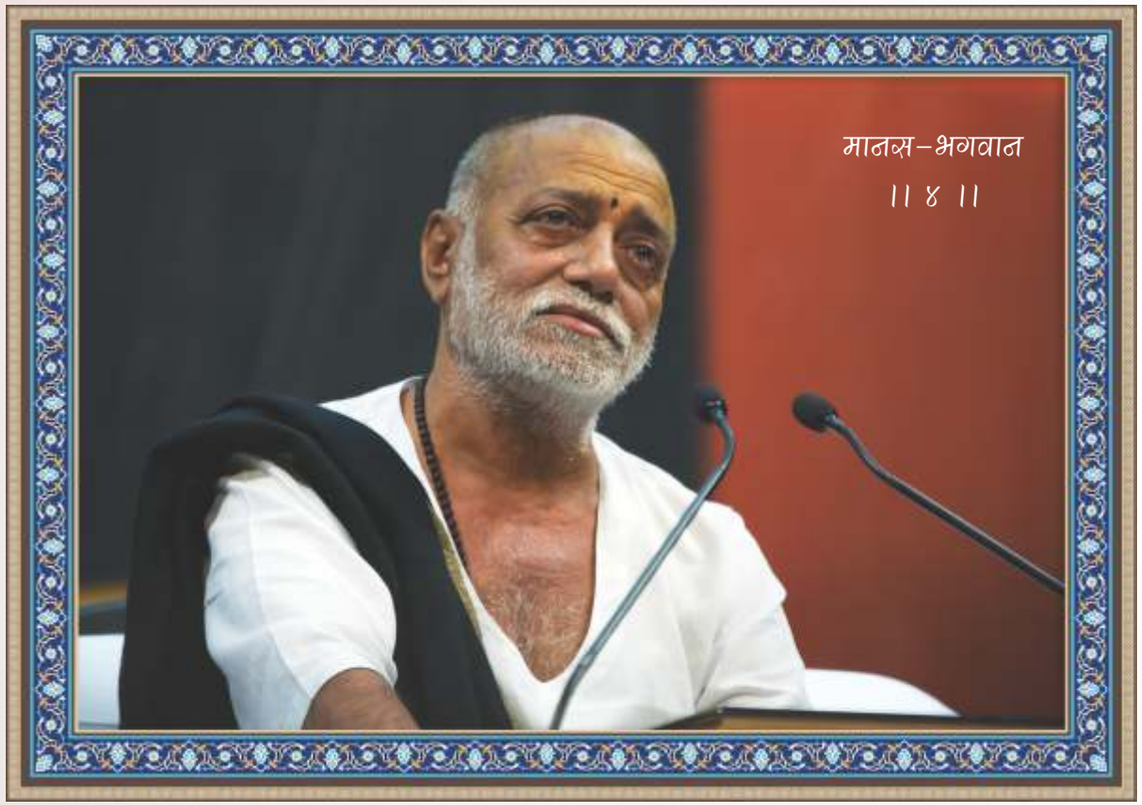

भगवान की कथा एक प्रयोगशाला है

'मानस-भगवान' इस कथा का केन्द्रीय विषय है। केवल 'रामचरित मानस' के आधार पर देखें तो भी बहुत संवाद हो सकता है; लेकिन अन्यान्य ग्रंथों का भी हम आश्रय ले रहे हैं। जिस पंक्ति का आश्रय हमने लिया है -

जथा अनंत राम भगवाना।
तथा कथा कीरति गुन गाना।।

भगवान अनंत है। 'भगवद्गीता' से आप परिचित है। 'गीता' में कहा है, मेरी विभूति का अन्त नहीं है। तो, सिद्ध हो गया कि विभु का कोई अन्त नहीं। तो, जिसमें छः वस्तु अनंत हो उसको हम 'भगवान' कह सकते हैं। और ये दुर्गम और दुर्लभ नहीं है; यद्यपि केवल उसकी चर्चा ही करें तो बहुत दुर्गम और दुर्लभ है। यदि आंखें खोले तो ये सब में है। प्रश्न है, आंख खुल जाए। मैंने शायद पहले दिन भी कहा कि जिसमें भगवता हो वो भगवान। और भगवता किसमें नहीं है? अंश और कला का मात्राभेद हो सकता है। छः वस्तु हम सब में है इसलिए हम भगवान है। लेकिन प्रश्न ये उठता है कि हम में ये अनंतरूपेण नहीं है, खंड़ितरूपेण है। और ये हम में भी अनंतरूपेण हो इसके लिए आंखें खुलने की जरूरत है। आज एक प्रश्न आया है कि 'आप की कथा क्या है; गौशाला, पाठशाला, धर्मशाला, व्यायामशाला-क्या है?' सब

है। मेरी नहीं, राम की कथा। आप खिड़कियां खुली रखो तो हर जगह शास्त्र खुले पड़े हैं। और खिड़की का मेरा मतलब आंखें। हम कितने बंधियार हैं! एक शे'र सुनाऊं?

वो अपने आप को हर शख्स से काबिल समझता है।
अज़ब इन्सान है नुकसान को हांसिल समझता है!

- 'मासुम' गाज़ियाबादी

ये घाटे का सौदा है।

न जाने कौन से माहौल से होकर ये आया है?
मैं बिस्मिल बोलता हूं और वो कातिल समझता है!

हम कथा में कैसे माहौल से आते हैं उस पर बहुत आधार है। मैं और आप कथा में आए तब आंख खोलने का चित्त लेकर आए। और यही कुछ कारण है कि हम में ये छः वस्तु अनंत नहीं रह पाती। प्रश्न है आंखें खोलने का।

तो, प्रश्न आया है कि आप की कथा क्या है? सब है। गौशाला है ये। रामकथा गौशाला है। किस गाय का यहां जतन हो रहा है? हमारी सात्त्विक श्रद्धारूपी गाय का यहां जतन हो रहा है।

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।

राजसी श्रद्धा नहीं। बार-बार शिंग मारे ऐसी तामसी गाय नहीं; सात्त्विक श्रद्धा। 'श्रीमद् भागवत' में आता है कि 'गोषु।' 'गोषु' का मतलब है, जो गायों का द्वेष करता है। 'गोषु' का मेरा मतलब है साहब कि गायों का द्वेष न करे लेकिन हम अपनी इन्द्रियों का भी द्वेष न करे। 'गो' मानी इन्द्रिय। आंख खोले, फ़ोडे ना। 'रामचरित मानस' ने वाल्मीकि जैसे वैज्ञानिक के मुख से इन्द्रियों को दिशा देने की कोशिश की है 'अयोध्याकांड' में। हरेक इन्द्रियों को दिशा देते हैं वाल्मीकिजी। कभी-कभी आदमी साधना के नाम पर इन्द्रियों रूपी गायों का द्वेष करता है। तो, मेरे भाई-बहन, भगवान की कथा गौशाला है; यहां हमारी सात्त्विक श्रद्धारूपी गाय को पोषित किया जा रहा है।

रामकथा अवश्य पाठशाला भी है। हम और आप तीन घंटें एक क्लास में बैठे हैं। ये एक वर्गखंड़ है। कुछ सीखा जा रहा है। मेरे लिए तो ये पाठशाला ही है, मैं रोज नया सीखता हूं। ये व्यायामशाला भी है। लेकिन कुस्ती के लिए नहीं; एक मानसिक व्यायाम हो रहा है; एक चैतसिक व्यायाम होता है। यद्यपि धर्मशाला कहना मुझे ठीक नहीं लगता। लेकिन फिर भी 'धर्मशाला' शब्द कोई खराब तो नहीं है। यदि धर्म की परिभाषा सत्य-प्रेम-करुणा की जाए तो धर्मशाला है; और धर्मशाला से बहुत सीखा जा सकता है, साहब! लेकिन अब मुझे कहना हो तो कहूं कि भगवान की कथा एक प्रयोगशाला है। यहां प्रयोग हो रहा है। मैं काम कर रहा हूं आप पर। 'भगवद्गीता' योगशास्त्र है, लेकिन रामकथा प्रयोगशास्त्र है। 'संगात् संजायते कामः।' 'भगवद्गीता' कहती है। लेकिन 'भगवद्गीता' के योगशास्त्र के जितने सूत्र है उसको रामकथा में प्रयोग में लाया गया। कैकेयी को मंथरा का संग हुआ और कामना जगी कि मेरे बेटे को राज मिले।

मेरे युवान भाई-बहन, यहां प्रयोग हो रहा है। ये केवल लेक्चरहोल नहीं है, लेबोरेटरी है। मेरी मेहनत को प्लीज़, देखिएगा। मैं बहुत आशा रखकर बोल रहा हूं। परिणाम आएगा। 'रामचरित मानस' का पाठ करो तो आप को शांति मिलेगी। तुलसी को मिली तो हम को भी मिलेगी, लेकिन उसके लिए आप को प्रयोग करना पड़ेगा। कथा प्रयोगशाला है। हम गाए आप सुनो ये सब विधा है कि कैसे भी बीज बो दिया जाए गीत के माध्यम से, रास के माध्यम से, शे'र के माध्यम से। प्रयोग है ये। मैं किसान हूं, केवल कथाकार नहीं। तो, मेरे भाई-बहन, ये प्रयोग है। आप का केवल मनोरंजन मेरा इरादा नहीं है। मैं फिर दीक्षित दनकौरी को याद करूं -

शायरी तो सिर्फ बहाना है,
असली मक्सद तो उसे रिझाना है।

असली मक्सद क्या है? मैं कोई स्टेज प्रोग्राम देनेवाला थोड़ा हूं? मैंने यद्यपि कभी कहा है कि मैं कब ठुमका लगाने नीचे ऊतरुं कुछ कहा न जाय! कई लोग राह देख रहे हैं! और मैं कहता हूं, मैं नाच रहा हूं, आत्मा से। मेरा कथन मेरा कथ्थक है। शंकराचार्य कहते हैं कि अच्छी वीणा हो, वादक की ऊंगलियां निपुणता से भरी हो और बजाये तो जरूर जनरंजन होगा लेकिन उसे कोई साम्राज्य नहीं मिलेगा।

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।

वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये।

'विवेकचूडामणि।' 'वाग्वैखरी' तुम्हारे पास वैखरी वाणी का विपुल मात्रा में प्रयोग हो लेकिन 'भुक्तये न तु मुक्तये।' ये भोग है इसका मतलब वाग्कौशल्य की आलोचना नहीं है, लेकिन सावधानी जरुर। 'शब्दझरी।' शब्दनी झड़ी अने एकेय फगे नहीं! अस्खलित वाणी। शास्त्र के व्याख्यान में पूर्णत: कौशल्य प्राप्त हो; प्रबल विद्वान हो। लेकिन शंकर कहते हैं ये सब भोग है, मुक्ति नहीं। शंकराचार्य ही ये कह सकते हैं; तथाकथित धर्म की ताकत नहीं है कि इतना साहसपूर्ण बोलना-

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।

विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।

ब्रह्मतत्त्व, परमतत्त्व समझ में न आए तो शास्त्र निष्फल है और शास्त्र जान लो, जानकारी में आ जाए उसके बाद भी शास्त्र निष्फल है। शास्त्र तो केवल बहाना है। ये तो केवल शंकर ही कह सकतें हैं कि नहीं जानो परमतत्त्व को तो भी तुम्हारे लिए शास्त्र निष्फल है और ब्रह्म को जान लिया उसके बाद भी शास्त्र कोई अर्थ नहीं रखता। बताओ ऐसा कोई ओर साहसिक दार्शनिक हो तो! बाकी तो सब पीटीपिटाई बातें चलती है!

'महाभारत' में 'भगवान' की एक व्याख्या है कि जिसके हृदय में भेद न हो वो भगवान। फिर मुझे 'महाभारत' का बुलावा आ रहा है। मैंने कहा ना कि मुझे कर्ण का पक्षपात है। पक्षपात का मतलब भेद हो गया ना? लेकिन यहां भाव का भेद नहीं है। कृष्ण कहते हैं, मुझे अर्जुन और कर्ण में कोई भेद नहीं है। मंत्र देखिए-

'ब्रह्मण्य: सत्यादी च तपस्विनियतव्रत: रिस्वपि दयावान् च तस्मात् कर्णो वृषस्वृत।'

कर्ण युद्ध के मैदान में और भीम का बेटा घटोत्कच, और उसके सामने कर्ण। और दुर्योधन आदि चाहते हैं कि घटोत्कच मर जाए तो जीत के बहुत-से द्वार खुल जाए। और कर्ण सामने है। कर्ण के पास इन्द्र की दी हुई एक शक्ति थी। और ये शक्ति कभी निष्फल नहीं जाती थी। और कर्ण ने वो शक्ति अर्जुन के लिए रखी थी। और अब गोविंद का खेल देखो! यहां कौरव आपस-आपस में चर्चा कर रहे कि घटोत्कच मरना चाहिए। दुर्योधन आदि ने संदेश भेजा कि घटोत्कच को खतम करो। तब एक क्षण के लिए, जो शक्ति उसने अर्जुन के लिए रखी थी वो उठाई। घटोत्कच पर फेंकी। घटोत्कच मरा। पांडवकुल रोने लगा। उसी समय कृष्ण का वर्तन देखिए 'महाभारत' में! साहब, बहुत पवन आए और वृक्ष की डालियां झूले ऐसे कृष्ण पीतांबर झूला रहा है! कृष्ण ने कहा, 'मेरी योजना सफल हो गई। कैसे भी ये शक्ति से अर्जुन बचा।'

ये आदमी, भगवान कृष्ण मुझे गज़ब का लगता है! लेकिन जब अर्जुन आया कृष्ण के पास कि अब समझ में आया कि आप क्यों नाचते थे? तब देखो अभेदी कृष्ण, भेदमुक्त कृष्ण! वो कहते हैं, 'तेरा गांडिव और मेरा सुदर्शन भी कर्ण का कुछ नहीं बिगाड़ सकता, जब तब उसके पास कवच-कुंडल है। और तुमने देखा कि इन्द्र ने भिक्षु के रूप में कवच-कुंडल मांग लिया। और इन्द्र ने उसी के बदले में वो शक्ति दी। मेरी इच्छा थी कि ये शक्ति दूसरी जगह चली जाए।' और कृष्ण का अभेदपना तो देखो! जो कहता है कि उसके सामने मेरा सुदर्शन निष्फल जाएगा।

किसी भी बृद्धपुरुष की प्रवृत्ति को देखकर निर्णय मत करना। समझना बहुत मुश्किल है। कृष्ण अभेद है। 'न वै भिन्ना सुखमाप्नोति'-'महाभारत।' जिसमें भेद होगा वो दुनिया में कभी सुख नहीं प्राप्त कर सकेगा। कृष्ण अभेद है। इसी शृंखला में कृष्ण अर्जुन से कहता है, 'झूठा गर्व मत लेना कि मैं तेरे पक्ष में हूं। मैं दोनों के बीच में डिस्टन्स किए हुए हूं।' कृष्ण कहते हैं, 'कर्ण ब्रह्म को जाननेवाला है। सत्यवादी है।' लायकात तो देखो कर्ण की! क्यों मैं पक्षपात न करूं? कर्ण तपस्वी है। 'नियत व्रत:', व्रत का भंग नहीं करता। और कृष्ण प्रमाणपत्र देते हैं, दुश्मन पर भी दया करनेवाला कर्ण। 'इसलिए हे अर्जुन, कर्ण को धर्मात्मा जान।'

तो, 'महाभारत' की ये व्याख्या है, जिसमें भेद न हो वो भगवान। कृष्ण का अभेदीरूप देखिए। बुद्धपुरुष भेद नहीं करता। लगे कि ये निंदा कर रहा है; नहीं, ये निदान कर रहा है। इसीलिए मैं भगवान शंकराचार्य को प्रणाम कर रहा हूं, जो अभेद बात करें। एक शे'र मैं आपके लिए लाया हूं।

देखे करीब से तो भी अच्छा दिखाई दे।

एक आदमी तो शहर में ऐसा दिखाई दे।

कोई ऐसा बुद्धपुरुष चाहिए वर्ना जब कोई बुद्धपुरुष बहुत करीब आता है ना तब पचाना मुश्किल होता है! कोई एक आदमी भी तो ऐसा मिले कि करीब से भी सुंदर लगे! एक बात है कि शंकराचार्य को 'जगद्गुरु' कहा वो योग्य ही है। शंकराचार्य जगद्गुरु है, कोई न माने तो क्या?

तो मेरे भाई-बहन, यदि आंख खुल जाए तो भगवान की जो छ: वस्तु अनंत है वो हम महसूस कर सकते हैं। परमात्मा में एक अनंत वस्तु होती है, ऐश्वर्य। समस्त ऐश्वर्य; ये पहला भग है। समस्त संपदा। वो पूरी दुनिया को माया से बांध भी दे। आंतर्-बाह्य ऐश्वर्य। वो भगवता है। दूसरा शब्द है, 'यश।' जिसकी कीर्ति अखंड हो। हम सब की कीर्ति खंडित है। परमात्मा की कीर्ति अखंड है। सौराष्ट्र का एक दोहा है, 'कीर्ति केरा कोटडा पाड्या नहीं पडंत।' ऐसी अनंत कीर्ति भगवान राम की, कृष्ण की, शिव की। हम भगवान होते हुए भी हमारी कीर्ति अनंत नहीं रह पाती। इसलिए आंख खुले।

तीसरा शब्द है, 'श्री।' श्री का अर्थ कई प्रकार से होता है। लेकिन 'श्री' का बिलकुल सामान्य अर्थ लूं तो 'श्री' मानी सौंदर्य; श्री मानी शोभा। प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना सौंदर्य होता है लेकिन खंडित है। परमात्मा का रूप अखंड है। चौथा भग है पराक्रम; विक्रम। पल-पल, अनंत। 'ओन्ली वन स्टेप इझ इनफ', ऐसी कविता गांधीजी की प्रार्थना सभा में कभी-कभी ली जाती थी। मेरे लिए एक कदम पर्याप्त है। आदमी में साहस करने का

भगवान की कथा गौशाला है; यहां हमारी सात्त्विक श्रद्धारूपी गाय को पोषित किया जा रहा है। रामकथा अवश्य पाठशाला भी है। हम और आप तीन घंटें एक क्लास में बैठे हैं। कुछ सीखा जा रहा है। ये व्यायामशाला भी है। लेकिन कुस्ती के लिए नहीं। यहां एक मानसिक व्यायाम हो रहा है, एक चैतसिक व्यायाम होता है। यद्यपि धर्मशाला कहना मुझे ठीक नहीं लगता। यदि धर्म की परिभाषा सत्य-प्रेम-करुणा की जाए तो धर्मशाला है; और धर्मशाला से बहुत सीखा जा सकता है। मुझे कहना हो तो कहूं कि भगवान की कथा एक प्रयोगशाला है। यहां प्रयोग हो रहा है। 'भगवद्गीता' योगशास्त्र है, लेकिन रामकथा प्रयोगशास्त्र है।

एक कदम। और अनंत साहस भगवता है।

युवान भाई-बहनों को मैं कहूं, एक जुवान आदमी लालटेन लेकर जा रहा था। और अंधेरी रात थी। तो, सोचा कि इसकी जो प्रकाश है वो तो दो फूट ही जा रही है और यात्रा दस माईल की है! तो, लालटेन रखकर जुवान बैठ गया। उसके पीछे एक बूढ़ा एक मोमबत्ती जलाकर निकला। उसको भी दस माईल दूर जाना था। उसने युवान को बैठे हुए देखकर कहा कि क्यों बैठा है? जुवान ने अपनी बात बताई। बूढ़े ने कहा, 'तेरे पास तो सुरक्षित लालटेन है, मेरे पास एक मोमबत्ती है। तू दो कदम जाएगा इतने तक तो उज़ाला पडेगा ना? तो दो कदम चल फिर उज़ाला दो कदम और आगे जाएगा।' एक कदम काफ़ी होता है।यात्रा तय हो जाती है। परमात्मा का साहस अनंत है और युवान को अगर भगवता को अक्षुण्ण रखनी है तो साहस न छोड़े। 'भगवद्गीता' कहती है, बहुत जन्मों के बाद कोई ज्ञान को प्राप्त कर सकता है, साहस चाहिए; अनंत विक्रम।

महावीर विक्रम बजरंगी।

जिसका अनंत पराक्रम है वो एक व्यवस्था भगवान की मानी गई।

पांचवां सूत्र है, ज्ञान। 'ज्ञान अखंड एक सीतावत।' भगवान राम का ज्ञान अखंड है, हमारा खंडित होता जा रहा है। इसलिए हम भगवता को महसूस नहीं कर पाते। अखंड समझ। स्वार्थी समझ नहीं कि स्वार्थ पूरा हो और समझ पूरी। और, वैराग्य। अखंड वैराग्य। कुछ समय रहे और फिर निकल जाए ऐसा नहीं। बहुत कठिन है। इसलिए मुझे निष्कुलानंदजी का पद याद आता है -

त्याग न टके वैराग्य विना,
वेश लीधो वैरागनो,
देश रही गयो दूर जी।

मुझे बहुत अच्छा लगता है ये पद। बहुत पते की बात की। अखंड वैराग्य।

मेरे भाई-बहन, ये सब अखंड जिसमें हो वो तो भगवान है। लेकिन कलिकाल है, मैं और आप किसी में, भले इनमें से कम मात्रा में कुछ दिखाई दे तो उसको आदर देना, चूकना मत। पूर्ण तो परमात्मा है। लेकिन उनके अंश होने के नाते हम भी इन दुर्गम और दुर्लभ मंज़िल को पार कर सकते हैं।

आज मैंने ऐसे ही सुबह निर्णय ले लिया था कि आज मैं रामजनम की कथा गा लूंगा। तो अब अनंत राम जो है, जिसकी कथा अनंत है, वो 'रामचरित मानस' के क्रम में रामजनम की कथा की यात्रा करें। कल रामनाम की वंदना तक हम क्रम लिए बैठे थे। उसके बाद कथा की पूरी प्रवाही परंपरा की एक तवारीख़ दी है। गोस्वामीजी कहते हैं, इस परंपरा में मैंने ये कथा वराहक्षेत्र में मेरे गुरु से सुनी। लेकिन उस समय मेरा बचपना था तो गुरु ने मुझे जो दिया वो मैं समझ नहीं पाया। लेकिन कृपालु गुरु ने मुझे ये कथा बार-बार कही। तो, गुरु ने बार-बार कथा सुनाई, चित्त में तब बात बैठी।

तो, इसी पावनी परंपरा में तुलसी ने कथा को भाषाबद्ध की, हम उसे भावबद्ध करें। चार घाट बनाएं। ज्ञानघाट पर शिव पार्वती को कथा सुनाए। उपासनाघाट पर बाबा भुशुंडि गरूड को। कर्म के घाट पर याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी को और शरणागति के घाट पर गोस्वामीजी अपने मन को और संतसभा को सुनाते हैं। तुलसी ने शुरू किया। फिर प्रयाग में लिए चलते हैं। याज्ञवल्क्य के सामने भरद्वाजजी ने जिज्ञासा की कि राम कौन? और प्रसन्नचित्त से याज्ञवल्क्य ने रामकथा का मंगलाचरण करते हुए सुना दिया पूरा शिवचरित्र। कुंभज के वहां कथा सुनने शिव को सती के साथ जाना; लौटते समय सती का संशय राम के उपर; परीक्षा में विफल होना; दक्षयज्ञ में सती का देहत्याग; दूसरा जन्म पार्वती के रूप में और फिर पुन: शिव और पार्वती का ब्याह होता है। पार्वती ने कार्तिकेय को जनम दिया। सब कथा मानवीय है।

भगवान शिव एक बार कैलास के वेदविदित वटवृक्ष के नीचे अपने हाथों आसन बिछाकर बैठे हैं। पार्वती आती है। जिज्ञासा करती है, 'आप मुझे रामतत्त्व समझाओ।' और शिवजी रामतत्त्व समझाने लगे। जय-विजय, सती वृंदा, नारद का श्राप, मनु-शतरूपा की तपस्या और राजा प्रतापभानु को श्राप। प्रतापभानु दूसरे जनम में रावण हुआ। रावण ने बहुत तप किया, बहुत वरदान प्राप्त किए और फिर वरदान का दुरुपयोग करने लगा! पृथ्वी त्रस्त हो गई। गाय का रूप धारण करके पृथ्वी ऋषि-मुनिओं के पास, देवताओं के पास रोई। आख़िर में ब्रह्मा के पास गई। ब्रह्मा की अगवानी में सामूहिक पुकार उठी। आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण करो। मैं रघुकुल में अवतरित होऊंगा।'

अब पूज्यपाद कलिपावनावतार गोस्वामीजी हमें लिए चलते हैं श्री अयोध्याजी। रघुवंश का शासन है। वर्तमान राजाधिराज दशरथजी है। सम्राट दशरथजी का सार्वभौम शासन। कौसल्यादि राजा की प्रिय रानियां पवित्र आचरण करती है। राजा को रानियां प्रिय है। रानियां अपने पति को आदर देती है। राजा और रानी मिलकर हरिस्मरण करते हैं। राम को प्रगट कर सके ऐसे दाम्पत्य की एक छोटी-सी फ़ोर्म्यूला। कैसे भी ये सूत्र धीरे-धीरे हमारे दिल में बैठे तो दाम्पत्य सुधरे।

गोस्वामीजी कहते हैं, सब प्रकार का सुख है अवधपति के द्वार लेकिन एक ग्लानि है कि पुत्र नहीं। और ये वेदना किससे कहे? महाराज दशरथजी ने निर्णय किया, मैं गुरुद्वार जाऊं। मुझे ये पक्ष बहुत अच्छा लगता है कि सब तरह से साधक जब हार जाए तब उसे याद आती है गुरुद्वार। मेरे देश में चार प्रकार के द्वार है - राजद्वार, देवद्वार, नगरद्वार और गुरुद्वार। अन्य द्वार बंद हो जाए लेकिन अपने गुरु का आंगन चौबीस घंटें खुला रहता है। आज राजद्वार गुरुद्वार गया है। अपनी पीडा या तो किसीसे न कहो, या तो कहे बिना न रह सको तो फिर बुद्धपुरुष को कहो। दशराथजी गए गुरुद्वार। अपनी दिल की बात रखी। गुरु ने तुरंत कह दिया, 'राजन्! धैर्य धारण करो।' शृंगिऋषि को बुलाया। पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया। पुत्रप्राप्ति की विधि जो है उसे तुलसी ने यज्ञ का नाम दिया है। भक्तिसहित आहुतियां दी गई। यज्ञनारायण अग्नि के रूप में हाथ में प्रसाद की खीर लेकर प्रगटे। यज्ञ से प्रसाद निकला है। प्रसाद का चरु महाराज के हाथ में। रानियों को बुलाई। आधा प्रसाद कौशल्या को; पा प्रसाद कैकेयीजी को; पा का दो भाग करके सुमित्रा को दिया। तीनों रानियां गर्भवती हुई है।

मंगल दिन बीतने लगे। प्रभु को प्रगट होने का अवसर निकट आने लगा। पंचांग अनुकूल हो गया है। प्रभु को आने की बेला आई। त्रेतायुग, चैत्र, नवमी तिथि, मंगलवार, मध्याह्न। सर्वत्र प्रसन्नता है, मंगल सगुन दिखते हैं। जगनिवास ब्रह्म, परमात्मा, प्रभु, ब्रह्म माँ कौशल्या के प्रासाद में प्रगटे, प्रकाश होने लगा! माँ स्तंभित हो गई! माँ कौशल्या ने प्रभु के इस रूप को देखा और माँ के मुख से शब्द निकल पड़े-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

और मुझे बहुत खुशी है कि रोम में रामजनम हो रहा है। तो, परमात्मा विग्रह धारण करके प्रगट हुए हैं। निखिल ब्रह्मांडनायक परमात्मा ने मनुष्यरूप धारण किया, रोने लगे। मानवीय रूप में विश्व को परमात्मा मिल रहा है। और बालक रोने लगा। परमात्मा जब चतुर्भुजरूप में प्रगटे तब मुस्कुराए लेकिन मानवीय रूप में आए तब रोने लगे। पूर्ण मानवीकरण है। बालक का रुदन सुनकर संभ्रम रानियां दौड़ आई! महाराज दशरथजी के पास बात गई। दशरथजी को सुनते ही ब्रह्मानंद होने लगा। वसिष्ठ आदि संतों को बुलाया। महाराज परमानंद में डूबे। पूरी अयोध्या में उत्सव का आरंभ होता है। रोम की इस व्यासपीठ से आप सब को रामजनम की बधाई हो।

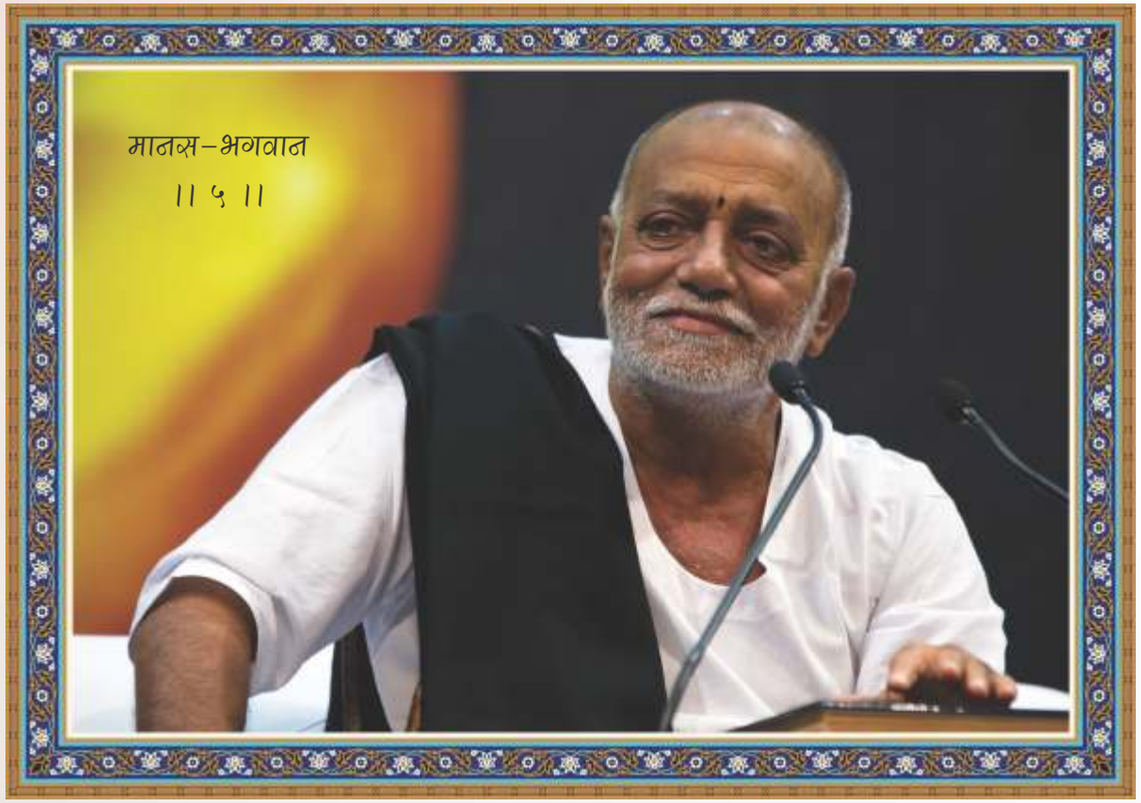

भक्त के लिए आए
और सबको जिनका लाभ मिल जाए वह भगवान

'मानस-भगवान।' 'रामचरित मानस' में राम को भगवान कहा गया है, शिवजी को भगवान कहा गया है, हरि को भगवान कहा गया है, ब्रह्मा को भी भगवान कहा गया है, महर्षि लोमस को भी भगवान कहा गया है, भगवान श्रीरंगजी को भी भगवान कहा गया है। तो, आदि-मध्य-अंत में भगवान प्रतिपद है।

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना ।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।।

एक ओर दर्शन हम और आप साथ मिलकर करें। लिखा है 'मानस' में-

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ।।

भगवान का एक ओर दर्शन। गोस्वामीजी कहते हैं, भगवान वो है जो भक्तों के लिए अवतरित होता है। और वहां

लिखा है कि भगवान राम नरशरीर एक सम्राट के घर आए, राजा भी बने और भगवान होने के कारण उसने क्या किया? बहुत पवित्र चरित्र किए। कैसे? जिसकी इस कथा में बहुत प्रतिष्ठा हो रही है, मानव भगवान की तरह।

तो, इतना बड़ा भगवान का दर्शन मुझे यहां गुरुकृपा से मिलता है। अब, एक-एक मुद्दे को हम प्रशांत और प्रसन्न चित्त से सुनें। पहली बात, 'भगत हेतु भगवान।' जो भक्त के हेतु हमारे जैसा बनकर यहां आए वो भगवान है। मेरे मन में ये सवाल उठता है कि क्या उसको ही हम भगवान कहेंगे कि जो केवल भक्त के लिए ही आए हैं? अभक्त के लिए न आए? मैं हर बात से तुलसी से सहमत होनेवाला आदमी नहीं हूं। मुझे मेरी स्वतंत्रता है। लेकिन जब तुलसी कहते हैं तब मैं कोई भी कोमेन्ट करूं इससे पूर्व सौ बार सोचता हूं कि कहीं मैं तो चूक नहीं रहा हूं ना? और फ़िर मुझे पोज़िटिव दिशा मिलती है। भगवान केवल भक्त के लिए आए वो ही? शुरू-शुरू में ठीक नहीं लगता। योगेश्वर भगवान कृष्ण केवल 'परित्राणाय साधुनाम्?' फ़िर मुझे भगवान ईसु भी याद आते हैं। 'होली बाईबल' में वो कहते हैं, एक मंदिर के द्वार पर सब को कहते हैं कि जिस मंदिर के फ़ाटक पर आप खड़े हैं, उस मंदिर में आप को निमंत्रण है। लेकिन इस मंदिर में आकर ये मेरा मंदिर, ये मेरा मंदिर ऐसे नारें गलत हैं।

जिसस कहते हैं, केवल मंदिर में जाकर आप ये मेरा मंदिर, ये मेरा धर्म, ऐसा-ऐसा मत चिल्लाओ। लेकिन मंदिर में आकर आप कुछ बंदगी करना चाहते हैं तो जिसस कहते हैं, अपना आचरण सुधारो। जिसको मैंने दूसरे दिन आप के सामने रखा, मंगलाचरण। हम किसी के चरण के आश्रित है? तो, गुजरातीमां आपणे कहीए ने के अमे आ चरणनां आश्रित छीए। हम उसके बचन के नहीं, आचरण के आश्रित है। आचरण; अपना आचरण सुधारो ऐसा जिसस कहते हैं। और फिर कहते हैं कि आप स्त्री का अपमान न करें, आप अशक्त को त्रास न दे, आप दीन-हीन पर जुल्म न करे, आप निर्दोष का रक्त न बहाए। - जिसस। फिर मेरे मन में ये बात उठती है कि इसका ये अर्थ न किया जाए कि निर्दोषों का रक्त न बहाओ, दोषी का बहाओ। आज, मेरी व्यासपीठ से, मेरी जिम्मेवारी से कहना है, शायद जिसस भी राजी हो जाए, दोषी का भी खून मत बहाओ। 'महाभारत' ने हमें सिखाया है कि भेद रखें वो भगवान नहीं।

आज मैं उठा रहा हूं कि केवल भक्त के लिए ही भगवान आए? अभक्त के लिए नहीं? शायद मैं कहना चाहूंगा कि भक्त को भगवान की जरूरत भी नहीं! संत को क्या जरूरत है? क्या भक्त के लिए आए वो ही भगवान? क्या दोषी का रक्त बहाना चाहिए? क्या अर्थ करें? मैं तो कहूं किसीका भी रक्त बहाया न जाय। मैं वो जिगरसाहब का शे'र बार-बार क्वोट करता हूं-

उसका फ़र्ज क्या है वो अहलेशियासत जाने,
मेरा पैयाम मोहब्बत है जहां तक पहूंचे ।

रक्त बहना ही नहीं चाहिए। अब 'महाभारत' की रक्तरंजित भूमि से और 'रामायण' के युद्धकांड से हम पाठ सीखें। अब युद्ध की नहीं, बुद्ध की जरूरत है। शायद भगवान ईसु भी इस बात से राजी हो। उसका टोन ऐसा नहीं हैं कि दोषी को मारो क्योंकि एक दोषी स्त्री को जब सब पथ्थर मार रहे थे तब तो उन्होंने उलटा निर्णय दिया था कि जिन्होंने जिन्दगी में कोई पाप न किया हो वो ही पथ्थर मारे। ईश्वर की इस गुणदोषमय सृष्टि में हम कौन निर्णय करनेवाले कि कौन दोषी, कौन निर्दोष? आप कहे तो एक शे'र सुनाऊं-

अपनी आवाज़ को बेशक कानों में रखना।
शहर की खामोशी का भी ध्यान रखना ।

आप सोचिए, तुम अपनी पीटे जा रहे हो! तुम कौन हो निर्णय देनेवाले? तुम कोई भी कर्म का आरंभ करो, कृष्ण कहते हैं, उसमें दोष है। कितने-कितने को मारोगे?

शहर की खामोशी का भी ध्यान रखना। कोई चूप है, जवाब नहीं देता इसका मतलब ये नहीं कि वो गुनहगार है; उसकी खामोशी को भी आदर देना। क्या अद्‌भुत शे'र बोला है! सत्य की उद्‌घोषणा है। अहमद फ़राज़साहब का शे'र है। और इससे भी एक ओर बढ़िया शे'र सुनिए-

मेरे झूठ को तुम खोलो और तोलो भी,

लेकिन तुम्हारे सच को भी तराज़ु में रखना।

तोलो यानी तुलना करना। मैं आप से निवेदन करूं, दुनिया में कभी किसी की किसी से तुलना मत करना। हमें किसे ठेका दिया है? फिर मुझे 'मासुम' गाज़ियाबादी याद आते हैं-

उसने किसने इज़ाज़त दी गुलों से बात करने की,

सलिका तक नहीं जिसको चमन में पांव रखने का।

युवान भाई-बहन! कभी भी किसी की किसी से तुलना मत करना। मुझे तो कई बहन-बेटियां लिखती हैं कि हम यशोदा कैसे बने? यशोदा बनने की कोशिश मत करो; तुम चाहो तो यशोदा से बेटर बन सकती हो। यहां परमात्मा की सृष्टि में परिवर्तन है, प्रतिकृति नहीं। एक वृक्ष के दो पत्ते एक समान नहीं होते। कैसे तोलेंगे? जो आदमी अपने होने में संतुष्ट नहीं, उसको विश्व कभी संतोष नहीं दे पाएगा। अपने होने का संतोष होना चाहिए। देव बनने की चेष्टा मत करो; जो हो, रहो। 'प्राकृत नर अनुरूप।' मेरे तुलसी की भाषा है।

कैसे निर्णय किया जाए कि ये दोषी और ये निर्दोष? स्वीकार करते जाओ। जिसस ने कहा कि 'निर्दोष का खून मत बहाना' और तुलसी ने कहा, 'भगत हेतु भगवान।' तो क्या अभक्तों के लिए नहीं? शायद मान लो कि भक्त के लिए भगवान आते हैं लेकिन भगवान का आना केवल भक्त के लिए नहीं होता है। कारण भक्त बना है लेकिन लाभान्वित पूरा जगत होता है। कथा का निमित्त कोई एक परिवार बन जाता है और लाभ पूरे संसार को मिलता है। भक्त के लिए भगवान जरूर आता है लेकिन अभक्त का द्वेष नहीं है। अभक्त को पहले देखता है परमात्मा। आप 'रामचरित मानस' के पूरे सात कांड को निचोड़ दो और उसका अर्क निकालो, वहां साधुपरुषों का लिस्ट नहीं दिया है, असाधुओं का लिस्ट दिया है -

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना ।

गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना ।।

शास्त्र के अंतिम शब्द है ये। वैद तंदुरस्तों की सेवा नहीं करता, मरीज़ो की सेवा करता है। हरि वो है जो अधम के पास जाए। अब, चलो माना कि आए हैं भक्तों के लिए लेकिन फ़ायदा तो औरों को ही हो रहा है। तो, कौन भक्त के लिए भगवान आता है? तिलक करे उसके लिए? माला रखे उसके लिए? माला और तिलक की आलोचना नहीं है। लेकिन 'भक्त' की व्याख्या क्या? किस भगत के लिए भगवान आता है?

चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।

चार प्रकार के भक्त गिनाए हैं और मेरे तुलसी ने भी यही उठाया-

राम भगत जग चारि प्रकारा ।

सुकृती चारिउ अनघ उदारा ।।

सीधा योगशास्त्र से प्रयोगशास्त्र में आ रहा है। तो, चार प्रकार के भक्त है और उसके लिए भगवान आते हैं। भगवान वो जो चार प्रकार के भक्तों के लिए आए और उनका लाभ चोराशी लाख योनि को मिले।

चार प्रकार के भक्तों की चर्चा 'भगवद्‌गीता' और 'मानस' दोनों ने की। आर्त भक्त, जिज्ञासु भक्त, अर्थार्थी भक्त और ज्ञानी। और 'रामचरित मानस' में चारों आप को मिलेंगे। आर्त भक्त कौन 'रामायण' में? बहुत निकलेंगे। मैं आप को कहूं कि श्रवण पहली भक्ति है, तो जो कथाश्रवण करे वो भक्त। पार्वती कैलास के शिखर पर श्रवण कर रही है इसलिए पार्वती भक्त है। लेकिन कौन सी भक्त है? आर्त भक्त है। प्रमाण-

गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं ।

आरत अधिकारी जहँ पावहिं ।।

तो, आर्त भक्त पार्वती है। भगवान शिव से कहती है कि हे महादेव, गूढ़ से गूढ़ रहस्य को बुद्धपुरूष खोल देता है। कहां? जहां आर्त श्रोता मिल जाए। तो, एक आर्त भक्त।

जिज्ञासु; जिज्ञासु कौन हैं? तीरथराज प्रयाग में बैठा भरद्वाज। 'रामु कवन प्रभु पूछउँ तोहि।' ये जिज्ञासा है। भरद्वाज जिज्ञासु भक्त है। और ज्ञानी भक्त कौन है? 'ग्यानीभगत सिरोमनि,' गरुड ज्ञानी भक्त है। जानता है। भगवान उनकी पीठ पर बैठते हैं। गरुड ज्ञानी भक्त है। और अर्थार्थी भक्त है मानवी का मन, तुलसी जिसको कथा सुना रहे हैं। हमारे मन को अर्थ चाहिए। जीवन का अर्थ, शास्त्र का अर्थ। ये सब अर्थ है। अर्थ मानी रूपया-पैसा नहीं। आप किसी को एक अच्छा विचार दो, दान है। एक अच्छी कविता दान है। दक्षिणा को ज्ञानोपदेश कहा है 'श्रीमद्‌भागवत' में। और हम लोग जो है, अर्थार्थी है। हमें विश्राम चाहिए।

ईश्वर धरती पर आता है, 'भगत हेतु भगवान।' भक्ति अर्थ का इन्कार नहीं करती। व्यास ने 'महाभारत' पूरा किया तो उर्ध्वबाहु हो गए और कहते हैं कि क्यों लोगों ने यही माना कि धर्म से मोक्ष ही मिलता है? लेकिन धर्म से तुम्हारा काम भी सिद्ध होगा, अर्थ भी मिलता है, तुम धर्म का सेवन क्यों नहीं करते?

तो, बाप! तुलसीजी कहते हैं ऐसे भक्तों के लिए भगवान आता है। तो, भगवान वो है जो भक्तों के लिए 'प्राकृत नर अनुरूप।' प्राकृत बनता है, अप्राकृत नहीं। भगवता अप्राकृत नहीं होती, प्राकृत होती है। स्वाभाविक होनी चाहिए। मैं फिर कहूं, हम दूसरों की तरह होने की कोशिश करे तो हम अप्राकृत है, विकृत है। दो हाथवाला बालक भगवान है। मिलिन्द गढ़वी और अन्य शायर के कुछ शे'र-

लब पे आते-आते रुकता कौन है?

तू नहीं अंदर तो दुखता कौन है?

मैं खड़ा हूं पर्बतों के सामने,

देखना है ये कि झुकता कौन है?

तो, भक्त के लिए जो आए और सब को जिनका लाभ मिल जाए वो भगवान। और फिर भगवान की दूसरी व्याख्या आगे आई कि जो सब पवित्र चरित्र करता है वो भगवान है। प्रत्येक कदम पवित्र हो, हर चरित्र पावन हो, उसको भगवान कहा है। लेकिन मूल तो है, 'प्राकृत नर अनुरूप।' हमें चाहिए ऐसा मनुष्य का प्राकृत रूपवाला सहज परमात्मा। हजार हाथवाला, अप्राकृत नहीं। तुलसी कहते हैं, मेरा इष्टदेव बालक राम है; मतलब कि जितने बालक हैं, बच्चे हैं वो राम है। भगवान राम ने परमात्मा होते हुए प्राकृत नरलीला की। बहुधा 'महाभारत' का योगेश्वर कृष्ण भी प्राकृत दिखा है, स्वाभाविक रहा है। 'महाभारत' में पहली बार का कृष्ण का प्रवेश और उनका स्वधामगमन-दोनों बिलकुल

दुनिया में कभी किसी की किसी से तुलना मत करना। मुझे तो कई बहन-बेटियां लिखती हैं कि हम यशोदा कैसे बने? यशोदा बनने की कोशिश मत करो; तुम चाहो तो यशोदा से बेटर बन सकती हो। यहां परमात्मा की सृष्टि में परिवर्तन है, प्रतिकृति नहीं। एक वृक्ष के दो पत्ते एक समान नहीं होते। जो आदमी अपने होने में संतुष्ट नहीं, उसको विश्व कभी संतोष नहीं दे पाएगा। अपने होने का संतोष होना चाहिए। देव बनने की चेष्टा मत करो; जो हो, रहो।

सहज है। उनका प्रवेश मानवीय है और वो मरा भी इन्सान की तरह। अपना ऐश्वर्य तो बहुत-बहुत जरूरत हो तब ही दिखा है। जरा का तीर जब लगता है और माफ़ी मांगने आता है जरा तब कृष्ण कहते हैं, 'नियति किसी को छोड़ती नहीं।' यहां कृष्ण एक भी शब्द ऐसा नहीं कहते कि 'मैं ईश्वर हूं।' 'मैं बड़ा हूं' ऐसा भी नहीं कहते। यदि वो कह दे कि तुने एक बहुत बड़ी हस्ति को तीर मारा है तो जरा को जनम-जनम अपराधभाव रहेगा। और मेरा गोविंद अपराधी को कभी अपराधभाव महसूस न होने दे ऐसा भगवान है। भगवता ऐसे नहीं मिलती, बाप!

मेरे कहने का मतलब कृष्ण का प्रवेश और निर्गमन दोनों प्राकृत है। हमें वो भगवान चाहिए जो

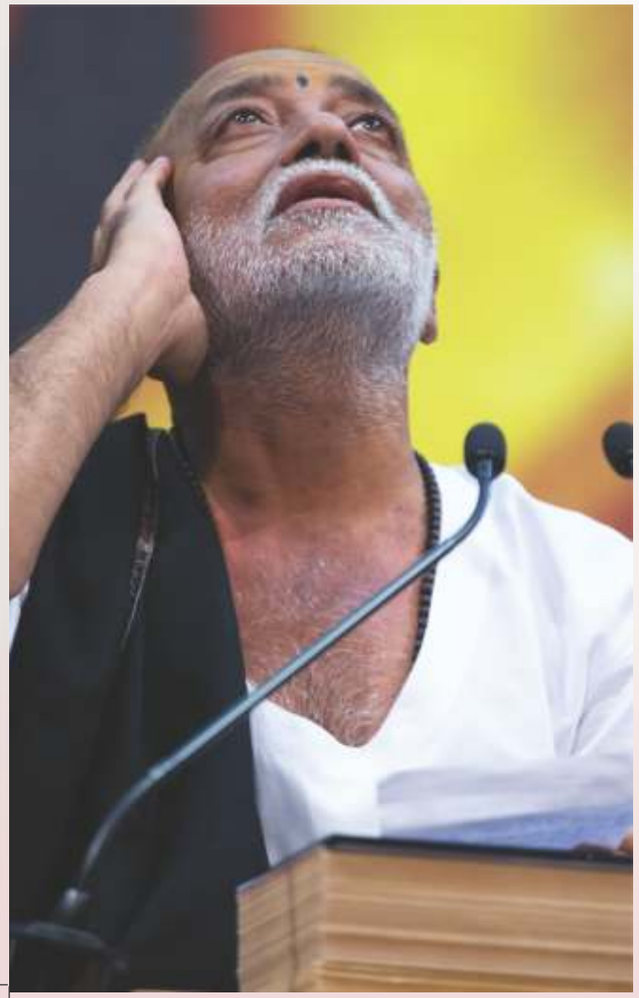

मानवीय है। वो हमारी पीड़ा महसूस करता हो। भावनगर के शायर नाज़िर देखैया का गुजराती शे'र है -

हुं हाथने मारा फेलावुं तो तारी खुदाई दूर नथी,

पण हुं मांगुं अने तुं आपे ए वात मने मंजूर नथी.

प्रभु ईसु स्वाभाविक मानवी की तरह यात्रा करते रहे। इसलिए मुझे ये बात प्रिय है। मुझे उनकी मासुमियत बहुत प्रिय है। परमात्मा से प्रार्थना कि ऐसा सुलूक विश्व में किसी के साथ न हो।

पीधां जगतना झेर तो शंकर बनी गयो.

कीधां दु:खो सहन तो पयगंबर बनी गयो.

यहां वेदना और पीड़ा के सिवा भगवता कहां प्राप्त होती है? मैं उस दिन धर्मस्थान में दर्शन करने गया और मैं ये सब देख रहा था सेन्ट पिटर का स्मृतिस्थान। सब वस्तु तो मुझे आकर्षित कर ही रही थी लेकिन सबसे ज्यादा मुझे छूनेवाली बात थी माईकल एन्जेलो ने जो मूर्ति बनाई, निर्दोष ईसु को मधर मेरी अपनी गोद में लिए बैठी थी, ये दृश्य मुझे छू रहा था, मानवीय दृश्य। ये जरूरी है। वहां कोई चमत्कार नहीं है।

'महाभारत' में एक यक्षप्रश्न है कि 'आदमी को सबसे ज्यादा मानसिक बोज़ कब लगता है?' तब धर्मराज कहते हैं, 'बाप से पहले बेटे की मृत्यु हो जाए और वो बेटा बाप के कंधे पर जाता हो उससे ज्यादा विश्व में बड़ा दु:ख नहीं होता।' विश्व इस मानवीयता का पूजक है।

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।

किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ।।

भगवान वो है जिसके प्रत्येक कर्म पवित्र हो। हिमालयने गरमी न लागे, गंगाने तरस न लागे, अग्निने फरफोला न पड़े एम साधुपुरुष ने कोई दिवस कलंक अड़ी न शके. आ बधांने तो सहन ज करवानुं होय छे.

आज मुझे बड़ी प्यारी चिठ्ठी मिली है कि

'भगवान दिखता नहीं है तो भगवान पर चर्चा क्यों हो रही है?' बड़ा प्यारा प्रश्न है। इस चर्चा का इतना महत्त्व क्यों? दिखता नहीं है इसीलिए मूल्यवान है। भारत ने कभी उपर की चर्चा की ही नहीं, भीतर की ही चर्चा की। बाहरी तो प्रपंच है। वृक्ष दिखता है न दिखनेवाली जड़ों के कारण। इस परम चेतना के कारण हम दिखते हैं। आप के विचार कभी दिखते हैं? वैसे ही परमात्मा ऐसे छिपा है कि उनके छिपने के कारण ही हम सब प्रगट हैं। और वो दिखेगा केवल मूर्तिओं में नहीं।

तुझ में रब दिखता है,

यारा मैं क्या करूं?

शरीर दिखता है लेकिन शरीर है आत्मा के कारण। सूफ़ी परंपरा में हुए बाबा फरीद। कहते हैं कबीर के समकालीन थे। एक बार कबीर और फरीद के शिष्य एक ही सराई में मिले थे। लेकिन दोनों मुलाकात नहीं करते। कबीर के शिष्यों ने कबीर से पूछा, फरीद के शिष्यों ने फरीद से पूछा कि आप एक ही सराई में मिले हैं और आप एकदूसरों को मिलते क्यों नहीं? फरीद ने कहा कि मैं जो जानता हूं वो कबीर जानता है; वैसे कबीर ने कहा कि मैं जो जानता हूं वो फरीद जानता है, बिना कारण बकवास करने की क्या जरूरत है? उपर से मिलना कोई मिलना है?

बाप! ये दंतकथा नहीं है, संतकथा है। ध्यान देना, जिसस को शूली दी गई और उसके चेहरे पर मुस्कुराहट है! ये कैसे हो सकता है? अब, फरीद को जब मिलनेवालें आए थे उसमें कोई नारियेल ले आए। तो फरीद को एक जिज्ञासु पूछने आया था उसको ये नारियेल पकड़ा दिया। और कहा कि ये तोड़ना लेकिन अंदर का भाग नहीं टूटना चाहिए। अंदर का भाग अखंड निकलना चाहिए। लेकिन नारियेल कच्चा था। अंदर तो सड़ा हुआ था, उसको बिलग करना मुश्किल था। फिर फरीद ने दूसरा नारियेल दे दिया। वो सुखा था। गोटा बिलग हो चूका था। उसने तोड़ दिया। टूटा, उपर का भाग टूट गया, अंदर जरा भी इजा नहीं हुई। फरीद का जवाब, जिसस इसलिए मुस्कुराए कि उसकी आत्मा देह से बिलग हो चूकी थी। हमनें आत्मा को ही देह समझ लिया! 'आत्मपीड़ा' शब्द है लेकिन आत्मा को पीड़ा हो सकती है? नारियेल पक्का होना चाहिए। जिसस पाकेलुं नारियेळ छे, गांधी पाकेलुं नारियेळ छे.

मेरे भाई-बहन! आत्मा नहीं दिखती लेकिन नहीं दिखानेवाली आत्मा के कारण ही हम दिखते हैं। जो बीज और जड़ नहीं दिखते उसके कारण ही पेड़ दिखता है। और पेड़ को निकालना है तो वृक्ष के आगे खोदकाम करनी पड़ेगी, जड़े निकालनी होगी, फिर पेड़ गिरेगा। वैसे आत्मतत्त्व को जानने के लिए सत्संग की खुदाई करनी पड़ेगी, उतरना पड़ेगा। ये बुद्धपुरूष जड़ तक पहूंचे।

रशिया के एक वैज्ञानिक ने विचार को पकड़ने की एक खोज़ की। उसके अपने सहायकों को एक हजार मिल एक आदमी के पास भेजा। और कहा कि आप वहां जाकर मुझे फोन करना। सहायक वहां पहूंच गए। फिर वैज्ञानिक ने यहां से विचार प्रेषित करते हुए कहा कि 'सो जा', तो सामने से फोन आया कि आदमी सो गया है। फिर वैज्ञानिक ने फिर से विचार प्रेषित करते हुए कहा कि 'जाग जा', तो वो आदमी जाग गया। तो, अब आए दिन विचार को पकड़ने की चेष्टा हो रही है, आए दिन विचार का चित्र भी तैयार होगा। आए दिन ऐसे ही खोज़ चली तो आत्मा भी पकड़ी जा सकेगी। लेकिन हमें इस मनोवैज्ञानिक खोज़ में कहां जाना है? हमें तो सबमें भगवान दिखता ही है। एक प्रयोग तो मैं आप को बताता हूं कि आप कोई अटारी पर है और ऐसे ही बाल्कनी में खड़े हैं। और कोई आदमी नीचे से, रास्ते से गुज़रे तब उसके सिर पर आप देखते रहो कि 'ये कौन है, जरा उपर देखे तो पता चले।' नब्बे प्रतिशत वो आदमी उपर देखेगा। जितनी हमारी निर्दोषता उतने ज्यादा विचार फैंके जा सकते हैं। मेरे भाई-बहन, जिन्होंने पवित्र चरित्र किया लेकिन बिलकुल प्राकृत नररूप में, वो भगवान है।

कथा-दर्शन

- 'भगवद्गीता' योगशास्त्र है, लेकिन रामकथा प्रयोगशास्त्र है।
- कोई भी शुभतत्त्व हमारे लिए सत्संग है।
- सत्संग से स्वभाव में थोड़ा परिवर्तन हो सक्ता है।
- अध्यात्म किसी को नीरस होने का उपदेश नहीं देता।
- मोहवश को नेहवश करे वो भगवान।
- दूर के भगवान को प्रणाम करो, निकट के भगवान को पहचानो, अपनाओ।
- संतपुरुष पूरी दुनिया को वात्सल्य लुटाता है।
- बुद्धपुरुषों को पहचाना नहीं जाता।
- साधु से दर्शन सिवा ओर कुछ मांगो ही नहीं।
- पूज्य होना बहुत आसान है, प्रिय होना कठिन है।
- साधक की सुबह तो उनके गुरु की आंखों से होती है।
- आचार्यों से चले वो संप्रदाय है, ईश्वर से जो चलता है वो धर्म है।
- जो विद्या विवेक पैदा न कर सके वो केवल श्रम है।
- दाताओं से मत मांगना, उदारों से मांगना।
- दुनिया में कभी किसी की किसी से तुलना मत करना।
- जो आदमी अपने होने में संतुष्ट नहीं, उसको विश्व कभी संतोष नहीं दे पाएगा।
- सत्य का द्रोह करे उसे कोई आश्रय नहीं देता।
- प्रसन्नता के लिए मौसम की जरूरत नहीं है, मन की जरूरत है।
- वैद्य तंदुरस्तों की सेवा नहीं करता, मरीज़ों की सेवा करता है।
- जिस जगह पर जाने के बाद आप की संसार से कोई मांग न बचे वो स्वर्ग है।
- हरेक अयोध्या में कोई मंथरा भी होती है
  और हरेक लंका में कोई विभीषण भी होता है।

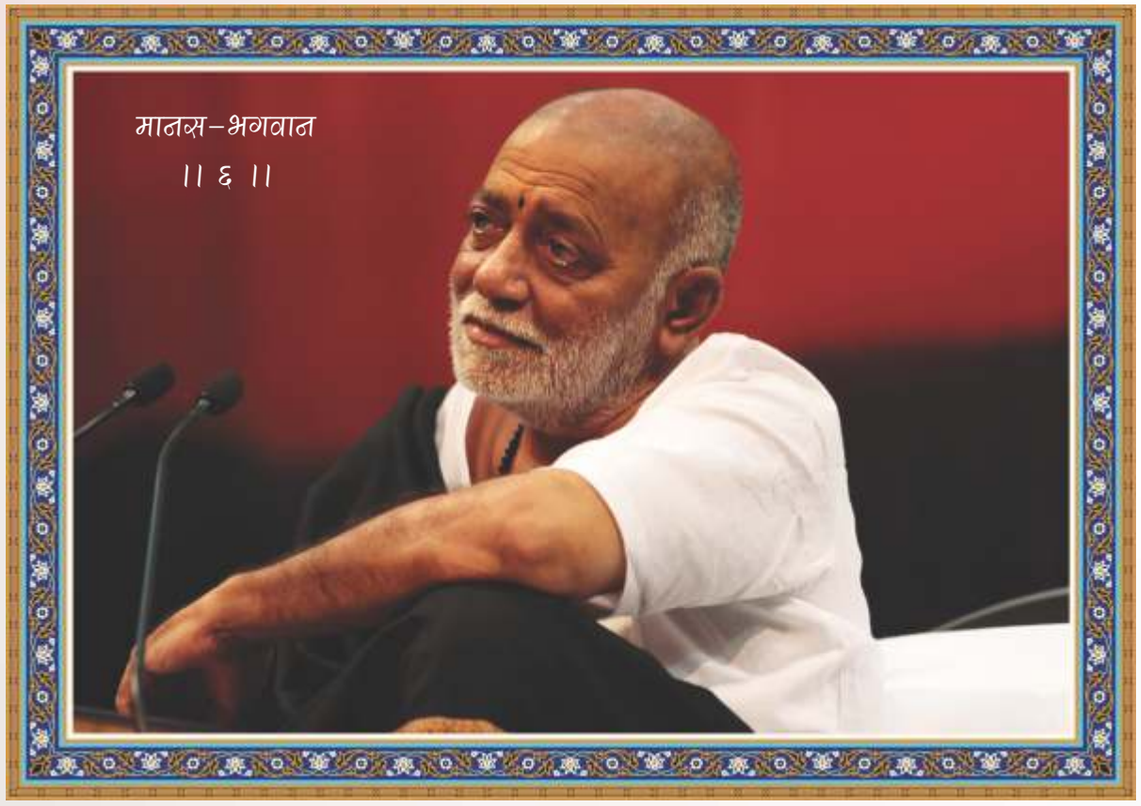

भगवान भाववश है, भोगवश नहीं

'मानस-भगवान' का एक ओर दृष्टि से हम दर्शन करें। 'रामचरित मानस' में लिखा है कि कौन भगवान?-

भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन।।

बिलकुल सुंदर, मुझे और आप को समझ में आ जाए ऐसी भगवान की हकीकत। भगवान कौन? जो भाववश है। हमारे भोगों के वश हो जाए वो भगवान नहीं है, वो शेतान हो सकता है। बहुत दो-टूक बात गोस्वामीजी पेश करते हैं। समाज में भी जो बात हमारी इन दिनों चल रही है कि दो हाथवाला भगवान! किसको हम भगवान कहेंगे? अन्त: स्वरूप से तो सब भगवान है लेकिन हमारा सूरज बादलों से छिपा है। कुछ वस्तुएं हमारे मूल स्वरूप को प्रगट नहीं होने देती। मेरे से कई बार ऐसी चर्चाएं होती है कि परमात्मा कैसे पाया जाए? तो मेरा एक ही उत्तर है, ये सनातन उत्तर है कि भगवान ओलरेड़ी पाया हुआ ही है, पहचान नहीं। और पहचान होगी किसी बुद्धपुरुष के माध्यम से। और बुद्धपुरुष की बातें भी समझ में न आई तो पहचान नहीं हो पाएगी। हम भगवान है, स्वरूप से है। भगवान होते हुए भी हमारा सूरजरूपी स्वरूप बादलों में छिपा है। कुछ कारण है कि हम अपनी भगवता को पहचान नहीं पा रहे हैं। और मेरी जिस

तरह मानसिकता है उस तरह बिना बुद्धपुरुष पहचानना मुश्किल है। 'रामचरित मानस' में लिखा है-

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।

स्वरूप अनुभवगम्य है। अथवा तो, 'ग्यानगम्य जय रघुराई।' 'मानस' अद्भुत शास्त्र है! ये वेदस्तुति है 'रामचरित मानस' में। चारों वेदों ने राजदरबार में प्रभु की स्तुति की तब वेद बोले हैं। कैसे भी मेरी और आप की विशेष जागृति हो ये बादल हटे और हमारा खुद का सूरज हमें महसूस हो। और आप जानते हैं, जब उमड़-घुमड़ कर बादल आते हैं तब उसे हटाने का काम करता है पवन। पवनपुत्र जैसा कोई बुद्धपुरुष हमारे इन बादलों को हटा सकेगा। इसलिए हम भगवान है। परमात्मा अनुभवगम्य है? ज्ञानगम्य है? भावगम्य है? बहुत-सी बातें शास्त्रों में लिखी हैं। लेकिन शास्त्र तक भी रुके मत रहियो।

मैं वो लारेन्स की बात कहता हूं कि इतना बड़ा आदमी लारेन्स अरबस्तान गया। और वहां के लोगों के साथ इतना हिलमिल गया कि उनको हुआ कि इन आरब भाई-बहनों को मैं पेरिस ले जाऊं। दस-पंद्रह आरब भाईओं को वो ले गया। पंचतारक होटेल में ठहराया। और बड़ा-बड़ा बाथरूम! जब भी नल खोलो, पानी ही पानी! बस, वो आरब नहाते ही रहे! लारेन्स मानसिक अभ्यास करने लगा। एक सप्ताह रहा। फिर जाने की बात आई तो कह दिया गया सुबह में कि सामान सब का पेक रखो, हमें निकलना है। सब ने सामान रख दिया। अब देर होती जा रही है! लारेन्स नीचे गया। होटेलवाले कर्मचारी उन आरबों को बुलाने गए। लारेन्स खुद जा कर देखता है कि सब स्नानागार में व्यस्त हैं! सब के हाथ में साणसी-पक्कड़! नल को निकाल रहे थे! 'इसमें से पानी निकलता है!' तब लारेन्स कहता है कि 'इस नल के पीछे एक बहुत बड़ी पाईप लाईन होती है और वो पाईप लाईन बड़े जलाशय से जुड़ी हुई होती है।' केवल शास्त्र से पानी नहीं निकलता, इनके पीछे सद्गुरु की कृपा की बड़ी पाईप लाईन होती है। जो हमारी निंद उड़ा दे ऐसी कोई पाईप लाईन पीछे होनी चाहिए। शे'र है एक-

निंद आखों की चुरा लेते हैं।
हम सितारों को दुआ देते हैं।

अब, किसी की आंख की निंद चुरा लो! शायर बड़ी अद्भुत बात कहता है कि मैं सोया था और मेरी निंद उड़ाई जा रही है! सद्गुरु हमारी निंद उड़ाता है लेकिन तब बहुत अहोभाव से उनके चरणों में प्रणाम करो कि अच्छा किया।

आग अपने ही लगा सकते हैं,
गैर तो सिर्फ हवा देते हैं।

तो, बाप! जरूरी है शास्त्र लेकिन केवल शास्त्र की ही हिफ़ाज़त करें और शास्त्र जहां से उतरा है वो बड़ा तालाब, उस कृपाधारा को हम भूल जाए तो? एक भाई के घर एक मेहमान उतरा। घोड़े पर आया। नीचे उतरा और एक कमरा उसको दे दिया। और कहते हैं कि जो यज़मान था वो घोड़े की देखभाल में डूब गया! पूरा दिन उसमें ही रहा। कोई दूसरा आदमी आया। पूछा कि किसका घोडा है? बोले, अरे! उसको तो मैं भूल ही गया! ऐसा नहीं लगता कि हम केवल घोडों की ही पूजा करते हैं? सवार को खोज़ो। स्वरूप की खोज। ये इन्द्रियां सब घोडें हैं उस पर सवार है हमारा स्वरूप। देखो, संयम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि-कुछ करना नहीं पड़ेगा। समाधि चुटकी लगाते लग जाएगी! ये अष्टांग जरूरी है लेकिन शंकर ने क्या किया? 'संकर सहज सरूप सम्हारा।' महादेव ने सहज अपने स्वरूप का स्मरण किया, 'लागि समाधि अखंड अपारा।' तो, केवल घोड़े का ध्यान रखे ऐसा न हो जाए! जिसको शंकराचार्य भगवान स्वरूपबोध कहते हैं। तो, हम स्वरूप के रूप में भगवान हैं। लेकिन भगवान का बोध होगा गुरुकृपा से। और ध्यान देना, गुरु मानी

कोई व्यक्ति नहीं लेकिन एक विशुद्ध प्रवाह।

हम क्या करते हैं कि स्थूल को पकड़ लेते हैं! शास्त्र को छोड़ना मत, यदि रुचि हो तो। मैं दबाव नहीं डालता। मेरा तो एक सूत्र है, मैं दीक्षा नहीं देता, मैं केवल दिशा दिखाता हूं कि इस दिशा पे चलने से मुझे अच्छा लगा, आप भी ट्राय कर के देखो। आप को इस राह पर चलना है तो आप अपने पैरों पे चलो। भारतीय अध्यात्म कभी नहीं कहेगा कि यही एक मार्ग है। वो सदैव कहेगा कि कई मारग है। जहां जाना है वो एक मात्र एक ही लक्ष्य है सब के लिए। 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' इतना औदार्य हमें भारतीय मनीषा ने, औपनिषदीय ऊंचाई ने दी है। मेरे गुरु की कृपा से मैं सहज साहस कर मेरी व्यासपीठ से 'अल्ला हू अकबर' बोल सकता हूं। डरें क्यों? डर तभी लगता है जब हमें कुछ स्वार्थ है। न गांधी डरे न जिसस डरे; न सुक्रात डरे न मीरां डरी; न कबीर डरे न नानक डरे; क्योंकि परमारथ के पंथी है। डर तो स्वार्थ में लगता है।

तो, कोई करे न करे, 'एकलो जाने रे!' और यहां जिन-जिनने पाया है, वो भीड़वालों ने नहीं पाया है, अकेले गए वो पा गए।

तारी हाक सुणी कोई न आवे
तो तुं एकलो जाने रे...

ये उदारता, परमात्मा करें हम सब में बसे। खैर! हम आप से निवेदन कर रहे हैं कि शास्त्र फेंक मत देना, उनका स्मरण जरूर रखना कि शास्त्र के पीछे किसी बुद्धपुरुष की कृपा अनिवार्य है।

हमारें शास्त्रों में लिखा है कि चार प्रकार के भगवान होते हैं। 'स्वयंव्यक्तश्च देवश्च सिद्धो मानुष एव च।'और उसमें आखिरी जो 'मानुष' है वहां मैं आप के साथ बातें कर रहा हूं। 'स्वयंव्यक्त,' जो स्वयं प्रगटते हैं उसको हम भगवान कहत हैं। 'भए प्रगट कृपाला...' शास्त्र वहां तक कहता है कि आप के पास एक शालीग्राम हो; शालीग्राम बनाया नहीं जाता, स्वयं व्यक्त है इसलिए शालीग्राम को शास्त्र ने स्वयं परमात्मा कहा। ये कोई उपकरण से नहीं बना, स्वयं बना है।

दूसरे भगवान है 'देवश्च', देवताओं द्वारा स्थापित किए गए। जैसे कि बदरीनारायण में नर-नारायण की मूर्ति कहते हैं कि देवताओं द्वारा स्थापित है। हमारा श्रद्धाजगत कहता है कि कनकभवन में, अयोध्या में जो ठाकुरजी है वो स्वयंव्यक्त है। लेकिन कुछ देवताओं द्वारा प्रतिष्ठित होते हैं। उसके बाद सिद्धों के द्वारा भगवान की प्रतिष्ठा की गई हो; आचार्यों के द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां। कोई रामानुज, कोई वल्लभ। अथवा तो स्वयं आचार्य को भी हम भगवान कहते हैं। भगवान वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य भगवान। और चौथा है मानव भगवान। जो हर घर में है। और उसे ओर स्थूलता से समझाने की कोशिश करूं तो, एक गांव है, उसमें कोई देवमंदिर नहीं है। तो गांववाले इकठ्ठे होते हैं और देवमंदिर बनाए ये मनुष्य के द्वारा निर्मित भगवान है। मेरा लक्ष्य है मानुष भगवान। 'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।' मानव भगवान समझ में आ जाए तो बाकी के तीनों भगवान समझ में आ जाएंगे।

तो, 'रामचरित मानस' में भगवान की जो बिलग-बिलग लक्षणा बताई है उसमें 'भाववस भगवान।' भगवान मानी जो भाववश है, भोगवश नहीं। हमारे पास कितने ही भोग के प्रसाधन हो, वो वश नहीं होता; वो केवल भाव से वश होता है। हमारे पास कितनी भी प्रभावक भाषा हो, भगवान भाषा से नहीं पकड़ में आता। भगवान आदमी के भाव की पकड़ में आता है। यद्यपि भाषा, साधन जरूरी है। ये भाववश भगवान न भाषा से वश होता है, न भोगों से वश होता है और न हमारे कोई विशेष भेष, विशेष युनिफोर्म से। वो केवल भाववश है। और 'रामचरित मानस' ने तो कहा कि भाव अच्छा हो या बुरा हो, चिन्ता मत करना; बेटर है कि अच्छा हो लेकिन

बुरा हो तो भी चिन्ता नहीं, गोस्वामीजी ने बहुत छूट दे दी-

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

लेकिन शुद्ध भाव बेहतर है। भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा है कि भाव शुद्ध हो तो ज्यादा अच्छी वस्तु है। और फिर भगवान तथागत ने फिर चार उपाय बताए कि भाव कैसे शुद्ध हो। उपाय नंबर एक, पहले शरीर का अवलोकन करने से धीरे-धीरे भावशुद्धि आएगी। शरीर का अवलोकन करो। आप नहाओ तब अपनी भुजाओं का अवलोकन करो, नख में कई मेल न रह जाए, कान में मेल न रह जाए। शरीर का अवलोकन करो। ये शरीर धर्मसाधन है। शरीर का अवलोकन जरूरी है। इतना बड़ा साधन! मेरे पास जीभ न होती तो मैं बोल नहीं सकता। शरीर बहुत महिमावंत है। लोगों ने कुछ-कुछ बातें ऐसी-ऐसी हमारे दिमाग में बिठा दी है कि शरीर तो नाशवंत है और मलयुक्त है! मेरा तुलसी बड़ा क्रांतिकारी है, कहते हैं कि 'बड़े भाग मानुस तनु पावा।'

दूसरा सूत्र, बुद्ध कहते हैं, अपने चित्त का अवलोकन करो। दिन में, जागृति में मेरा चित्त कहां-कहां जाता है उसका अवलोकन करें। 'हनुमान चालीसा' में इसलिए एक पंक्ति आती है, 'और देवता चित्त न धरई।' समय मिले और अंदर से उठे तो हमारा चित्त जागृति में कहां-कहां भटका है उसका अवलोकन करो। सच में कितनी बार गया और झूठ में कितनी बार गया? अच्छा सोचने में कितना गया और बुरा सोचने में कितना गया? कुछ प्रयोग तो करने पड़ेंगे। विनोबाजी उसको 'चित्तशोधन' कहते हैं। और एक अभ्यास से ऐसा हो जाएगा कि सभी प्रवृत्तिओं को हम न्याय दे पाएंगे और चित्त कहीं एक जगह पर लगा रहेगा। थोड़ा प्रयोग के बाद सिद्ध होगा। गोपियां गायों को दोहती थी, रसोई बनाती थी लेकिन निरंतर चित्तअवलोकन की प्रक्रिया से गोपिओं का चित्त निरंतर कृष्ण में ही रहता था। 'मोरारिपादार्पित चित्तवृत्तिः।' थोड़ा चलना होगा, उसको कहते हैं चित्तअवलोकन। पहले तो अवलोकन ये करें कि हमारे में जो खराब वस्तु है वो दूसरों में दिखती है तो हम उसकी आलोचना करते हैं! तो, हमारे में वो ही है तो हम उसको निकालने की इमानदार कोशिश क्यों नहीं करते? आप झूठ बोलते हैं लेकिन आप का बेटा आपके सामने झूठ बोले तो आप को अच्छा नहीं लगता!

फिर बुद्ध भावशुद्धि के लिए तीसरा सूत्र देते हैं, चित्तवृत्तिओं का अवलोकन। ये थोड़ा ओर सरल कर दिया। कितनी ये वृत्तियां बदलती रहती है! इन वृत्तिओं का अवलोकन किया जाए। फिर चौथा, अपनी स्थिति का अवलोकन करो। स्थिति मिन्स मुझे दुःख क्यों आ रहा है? मुझे शांति क्यों नहीं मिल रही है? तो, उसके कारण की जो खोज करनी है वो स्थिति का अवलोकन। और ये स्थिति का अवलोकन साधक ठीक से करने लगेगा तब वो किसी पर दोषारोपण नहीं करेगा। उसको पता लग जाता है कि उसका कारण मैं ही हूं। हम स्थिति का अवलोकन नहीं करते और जो परिस्थिति पैदा होती है

भगवान मानी जो भाववश है, भोगवश नहीं। हमारे पास कितने ही भोग के प्रसाधन हो, वो वश नहीं होता; वो केवल भाव से वश होता है। हमारे पास कितनी भी प्रभावक भाषा हो, भगवान भाषा से पकड़ में नहीं आता। भगवान आदमी के भाव की पकड़ में आता है। यद्यपि भाषा, साधन जरूरी है। ये भाववश भगवान न भाषा से वश होता है, न भोगों से वश होता है और न हमारे कोई विशेष भेष, विशेष युनिफोर्म से। वो केवल भाववश है।

उसका आरोप दूसरों पर करते हैं! मूलत: स्थिति ने परिस्थिति पैदा की है।

तो, भगवान की बड़ी प्यारी व्याख्या तुलसीजी देते हैं कि भगवान वो है जो भाववश है। दूसरा सूत्र, 'सुखनिधान।' भगवान वो है जो सुखनिधान है, सुख का खज़ाना है। जिस व्यक्ति के पास आप जाओ और आप को सुख अनुभव में आने लगे उसको भगवान समझो। आपत्ति क्या है? क्यों हमें कोई ऐसे महापुरुषों के पास अच्छा लगता है? क्योंकि वे सुखनिधान होते हैं। बशीर बद्र -

इन फ़कीरों को गज़ल सुनाया करो,
जिसकी आवाज़ में लोबान की खुश्बू है ।

वो फ़कीर सुख देता है। एक बच्चा हमें सुख देता है तो समझो कि वो भगवान है।

तीसरा सूत्र, 'करुणाभवन।' करुणा का मंदिर हो। जिसकी वाणी में करुणा, जिसकी नजर में करुणा। जिसका क्रोध भी करुणा से भरा हो, ये भगवान। बुद्ध को हमनें ठीक कहा है, 'करुणामूर्ति बुद्ध।' वो बैठे तो करुणा, बोले तो करुणा, फूल देखते रहे तो करुणा, सो जाए तो करुणा। और हमारी सनातन परंपरा ने तो शंकर भगवान को साक्षात् करुणा का रूप बताया। 'कर्पूर गौरं करुणावतारम्।' ऐसे किसी भी इन्सान को भगवान कहने में देर मत करना। उत्तरार्ध में कहते हैं, 'तजि ममता मद मान।' भगवानों को पहचानने के लिए हे साधक, तू तेरी ममता छोड़; लालच छोड़। लालसा लगाओ; 'लालसा' प्रेमपूर्ण शब्द है। पहली शर्त बताई गोस्वामीजी ने कि ऐसे

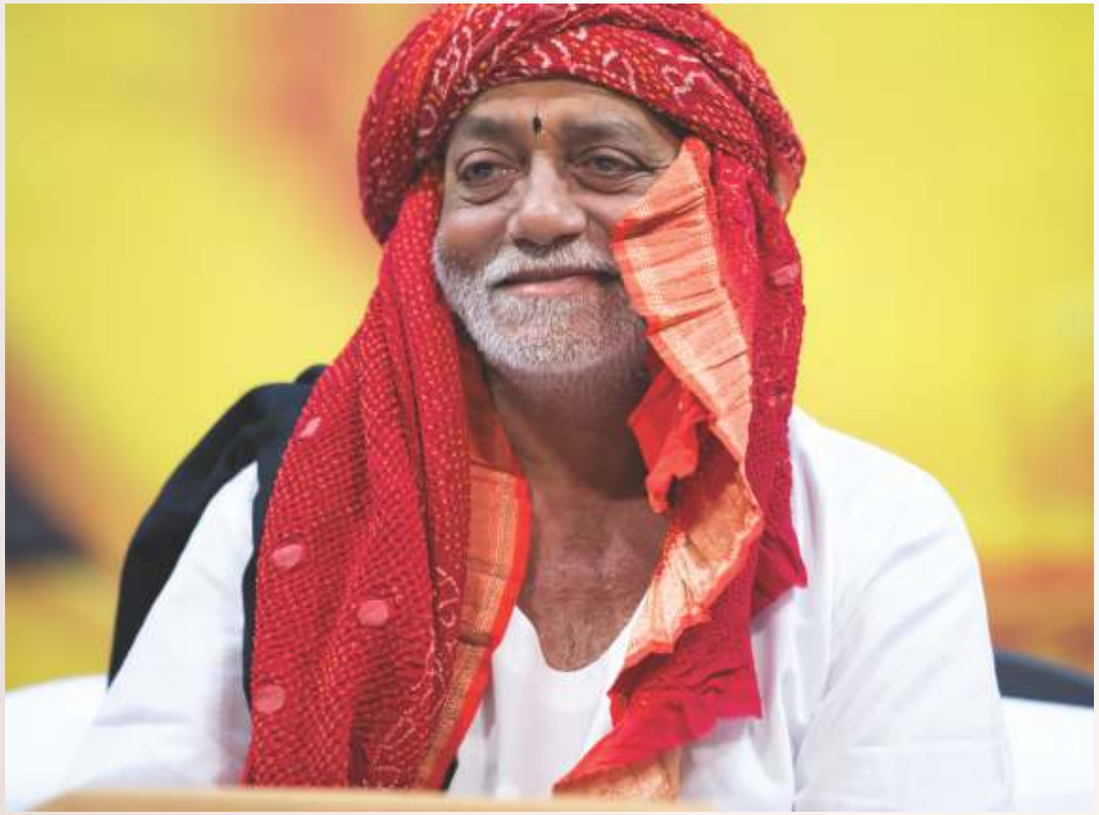

भगवानों को पहचानने के लिए ममता छूटे। ममता का एक अर्थ होता है अंधेरा। हम उज़ाले में थोड़ा आ जाए, प्रकाश में जीए।

आगे का सूत्र है, किसी भी पद-प्रतिष्ठा का अभिमान छूटे। और मद इतनी वस्तु का होता है: रूप का, यौवन का, धन का, पद और प्रतिष्ठा का, ज्ञान का। आदमी को अपने रूप का मद होता है, यौवन का मद होता है। सत्संग फायदा करेगा, इस मद से थोड़े-थोड़े हम दूर हटेंगे। ये मद जब तक नहीं हटेगा, भगवान हमारी अगल-बगल में होते हुए पहचाना नहीं जाएगा। हमारे पास मद करने जैसा क्या है? लेकिन ये मद छूट गया मानो तो भी भगवान की पहचान अधूरी मानी गई यहां। ये छूट जाए उसके बाद भी एक आखिरी सूत्रपात करते हैं, 'भजिअ सदा सीता रवन,' कायम तू हरि भज। वर्ना ये अहंकार और ममता कब आ जाएंगे, कहा नहीं जाता! इसलिए हरि भजो। कुछ शे'र सुनिए। मुनव्वर राणा का एक शे'र है-

मैं किसी फ़कीर के होठों की मुस्कान हूं।
कोई मेरी किम्मत क्या अदा करेगा भला!

किसकी ताकत है कि फ़कीरों की मुस्कान का मूल्य अदा कर सके?

चढ़ जाए तो फिर उतरता कहां है कभी?
ये इश्क का नशा भी गरीब के कर्ज़ जैसा है ।

-मुनव्वर राणा

ऊंगलियां तक महकने लगती है,
तेरी तसवीर जब बनाता हूं।

-शरफ़ नानपारवी

जिसने छू कर मुझे पथ्थर से फिर इन्सान किया,
मुद्दतों के बाद मेरी आंखों में आंसु आए ।

-बशीर बद्र

तो, बाप! मैंने कल कहा था कि 'रामचरित मानस' में भगवान राम आदि-मध्य-अंत में प्रस्थापित हैं। शिव भगवान हैं, राम भगवान हैं, कृष्ण भगवान हैं, कपिल भगवान हैं, श्रीरंग भगवान है। ये जितने-जितने को भगवान माना है 'मानस' में उसका कुछ स्मरण हम करते हैं।

भगवान राम का जन्मोत्सव हमने मनाया। समय बीतने पर नामकरण संस्कार हुआ। कौशल्या के पुत्र का नाम राम; कैकेयी के पुत्रों का नाम भरत और शत्रुघ्न तथा सुमित्रा के पुत्र का नाम लक्ष्मण। चारों के नामकरण की आध्यात्मिक चर्चा कई बार हमनें की हैं। भगवान राम वसिष्ठजी के द्वार विद्या प्राप्त करते हैं। फिर एक बार विश्वामित्र आते हैं और राम की मांग करते हैं। दशरथजी थोड़े दु:खी हुए। आखिर में गुरुदेव वसिष्ठजी के कहने पर दशरथजी पुत्र को सोंप देते हैं। राम-लक्ष्मण दोनों को लेकर विश्वामित्रजी अपने आश्रम की ओर यात्रा शुरू करते हैं। सबसे पहले प्रभु ने ताड़का को एक ही बाण से परमपद दिया। दूसरे दिन सुबह यज्ञ का आरंभ होता है। मारीच को बिना फने का बान मारकर रामजी ने समुद्रतट तक फैंक दिया! सुबाहु को जलाकर भस्म कर दिया!

राम की पदयात्रा आगे बढ़ती है। रास्ते में एक आश्रम देखा। विश्वामित्र से रामजी ने जिज्ञासा की। और विश्वामित्र बोले, 'राघव! ये गौतम नारी अहल्या है, श्रापवश हुई है। अब आप के चरणकमल की रज चाहती है। उस पर कृपा की जाए।' मेरे भाई-बहन, जीवन में यदि कुछ भूल हो जाए तो चंचलता को सिमटकर एक ऐसा धैर्य निर्माण किया जाए कि वो आएगा। भूल किससे नहीं होती? कवि 'कलापी' ने तो गाया -

हा! पस्तावो विपुल झरणुं स्वर्गथी ऊतर्युं छे,
पापी तेमां डूबकी दईने पुण्यशाळी बने छे.

कुछ धर्मों में छोटी-छोटी भूलों के लिए बहुत बड़े-बड़े दंड का विधान है! उसके सामने फिर एक बार

भारत को रखिए। अहल्या के द्वारा हुई भूल कोई सामान्य नहीं थी फिर भी भारतीय परंपरा में इतनी गंभीर भूल का दंड कोई नहीं बताया, केवल स्थिरता। ये उदारता है। अहल्या भगवान के चरण में गिरती है। अहल्या को अयोध्या नहीं जाना पड़ा, अयोध्यावाले को अहल्या के पास आना पड़ा!

भगवान की यात्रा आगे बढ़ी। विश्वामित्र ने गंगावतरण की पूरी कथा सुनाई। उसके बाद यात्रा आगे बढ़ी। जनकपुर पहुंचे। महाराज जनक मिलने आए। वेदांती जनक, राम को देखते ही नाम और रूप में उसका मन डूब गया! मिथिला में 'सुंदरसदन' में ठहराया गया। सायंकाल को राम-लक्ष्मण विश्वामित्र की आज्ञा पाकर जनकपुर का दर्शन करने के लिए जाते हैं। पूरी जनकपुरी प्रभु के नाम-रूप में डूब चूकी! प्रभु लौटे। भोजन-गुरुसेवा हुई। विश्राम हुआ। उसके बाद प्रभु सुबह गुरुपूजा के लिए पुष्प चुनने के लिए जनकपुर की पुष्पवाटिका में गए। वहां जानकी और राम का प्रथम विवेकपूर्ण मिलन हुआ। जानकीजी पार्वती के मंदिर में जाकर भवानी की स्तुति करती है। और पार्वती की मूर्ति बोली, आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मन में जो सांवरा वर है वो तुम्हें मिलेगा।

यहां भगवान राम-लक्ष्मण फूल लेकर गुरु के पास आते हैं। गुरुपूजा हुई और गुरु ने आशीर्वाद दिया। तीसरे दिन धनुषयज्ञ था। महाराज जनक के दरबार में कोई शिवधनुष नहीं तोड़ पाया! गजपंकजनाल की तरह भगवान राम ने धनुष को तोड़ डाला! और जानकीजी ने राम के कंठ में जयमाला पहना दी। धनुष अहंकार है, जानकी भक्ति है। साधक जब तक अहंकार नहीं तोड़ता तब तक भक्ति प्राप्त नहीं होती। इतने में परशुराम आ गए। परशुराम भी राम के प्रभाव को जानकर लौट गए। जनकजी के दूत शादी का पत्र लेकर अयोध्या गए। महाराज दशरथ बारात लेकर जनकपुर आए। मागशर शुक्ल पंचमी का दिन है। यहां वसिष्ठजी ने कहा, 'राजन्! आप की तीन बेटियां कुंआरी है, हमारे तीन राजकुमार है, सब का यहां ब्याह हो जाए?' बोले 'महाराज! इससे बड़ी क्या बात हो सकती है?' तो, जानकी राम को अर्पित, ऊर्मिला लक्ष्मणजी को, श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न को और मांडवीजी भरतजी को। कुछ दिन बारात रुकी। फिर बिदा हुए।

अयोध्या पहुंचे। कुछ दिन बीतें। और उसके बाद महाराज विश्वामित्र ने दशरथजी से बिदा मांगी। विश्वामित्र को बिदा देने सपरिवार दशरथजी खड़े हैं। और पूरा परिवार चरणों में रखते हुए दशरथ के बोल -

नाथ सकल संपदा तुम्हारी ।
मैं सेवकु समेत सुत नारी ।।

अच्छे बचन बोले दशरथजी, 'बाबा! ये अयोध्या, अयोध्या का राजखज़ाना, मेरा परिवार-ये सब आप की संपदा है। मैं तो सब के साथ आप का सेवकमात्र हूं। हम तो आप को नहीं भूलेंगे लेकिन कभी आप को हमारी याद आए तो हमें दर्शन देने आते रहना।' गृहस्थ को साधु से क्या मांगना चाहिए वो दिखाया है। मुझे 'परवाज़'साहब का एक शे'र याद आ रहा है-

शबभर रहा ख़याल में तकिया फ़कीर का,
दिनभर सुनाऊंगा तुम्हें किस्सा फ़कीर का।

मेरे खयाल में रातभर मेरे गुरु का स्थान मुझे याद रहा, अब जगत को मैं दिनभर साधु की बात सुनाऊंगा।

हिलने लगे हैं तख्त उछलने लगे हैं ताज,
शाहों ने जब सुना कोई किस्सा फ़कीर का।

ऐसा एक विरक्त साधु, विश्व से जो मैत्री करने निकला था, ऐसा एक साधु दशरथजी से विदा ले रहा है। साधु से दर्शन से सिवा और कुछ मांगो ही नहीं। उनके दर्शन में सब कुछ आ जाता है।

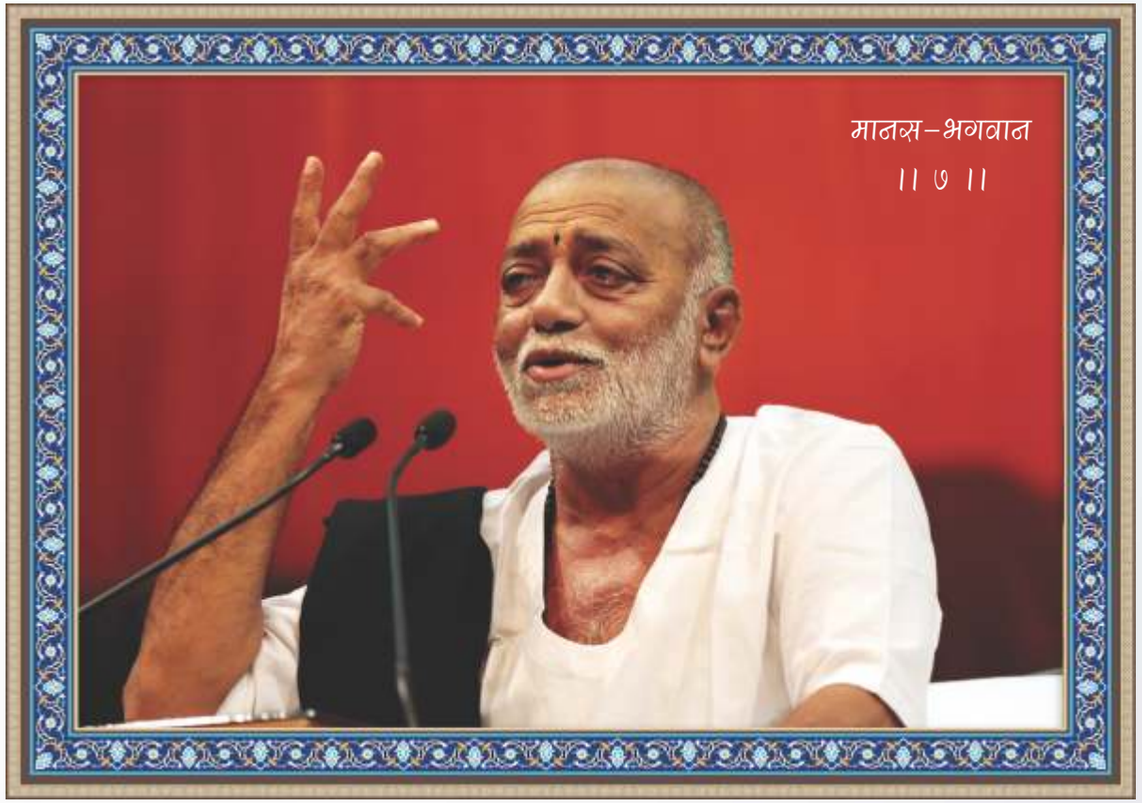

वह भगवान है, जो भक्त की आरति हरे

कथा-परंपरा का एक नियम है, कथा चार बिंदु को छूती है। कथा का पहला बिंदु है आरंभ। किसी तिथि, किसी समय आरंभ होता है। दूसरा बिंदु है विस्तार। धीरे-धीरे कथा का विस्तार होता है। इसमें दो विस्तार, सूत्रविस्तार और मंत्रविस्तार। सूत्रविस्तार मानी थोड़े में बहुत कुछ कह देना। और, मंत्र मानी विचार, विचारों का विस्तार। तीसरा बिंदु है समेटना; धीरे-धीरे प्रत्याहार। और चौथा बिंदु है समापन करना। रोम की इस पावन भूमि पर कथा का आरंभ हुआ, विस्तार भी होता गया, अब मेरी व्यासपीठ समेटन की ओर जा रही है। और परसों उसको विराम दे दिया जाएगा। कथा के ये चार बिंदु को वक्ता को छुना पड़ता है। तुलसी के इस दर्शन में 'भगवान' की बिलग-बिलग व्याख्याएं प्राप्त होती है। 'विनयपत्रिका' में भगवान शिव के लिए 'भगवान' की एक परिभाषा है-

को जाँचिये संभु तजि आन।

गोस्वामीजी कहते हैं, शंकर को छोड़कर हम किससे याचना करें? बड़ों-बड़ों ने जब जरूरत हुई, शिव को पुकारा। याचना कोई ऐसे दरबार में हो जो याचक को गरीब न समझे लेकिन उदार समझे। ध्यान देना, शिव और राम ऐसे उदार है। वो याचक को भी उदार समझते हैं।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।

'भगवद्गीता' कहती है, चार प्रकार के भक्त है। भगवान कहते हैं, ये चारों उदार है। मेरे तुलसी क्या कहते हैं? 'सुक्रित चारिउ अनथ उदारी।' ये बिलकुल 'गीता' है। धन्य है 'गीता' और 'मानस' कि जहां इन मांगनेवालों को उदार बताया। 'उदार' शब्द भक्तिमारग का बड़ा प्यारा शब्द है।

तो, याचना करनी है तो ऐसे दरबार में करे जो याचक को भीख़मंगा न समझे, उदार समझे। इसलिए 'विनयपत्रिका' में लिखा है, 'जाँचिये गिरिजापति कासी।' याचो तो ऐसे से याचो, जिसके भवन में सब कुछ पड़ा है।

मैं यहां जो कहने जा रहा हूं वो 'भगवान' की व्याख्यावाला पद है कि-

को जाँचिये संभु तजि आन।

दीनदयालु भगत-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ।।

मेरी व्यासपीठ को तुलसी के इस दर्शन से तीन संकेत किसी की भगवता को पहचानने के लिए प्राप्त होते हैं। किस को कहेंगे भगवान? यद्यपि है सब। कल भी मैं बोल रहा था कि हम पहचान नहीं पा रहे हैं। रोशनी पर्दे में है। इसलिए जरूरत है किसी बुद्धपुरुष की, जो हमें अनावृत करे। वेदांत में इसको कहते हैं, आवरणभंग।

चांद कब तक ग्रहण में रहे?

जरा जूल्फें हटा लीजिए।

है तो रसिक पंक्ति लेकिन क्या ईश्वरसाधना की पंक्ति नहीं है?

तो, बाप! हम में कहां है इतना सामर्थ्य? याचो ऐसों को। परमात्मा हमारे सुख को भी हरता है, दुःख को भी हरता है। दुःख को हरकर जला देता है और सुख को लेकर वो अपने पास रख़ता है, जब-जब हमें जितना चाहिए इतना देता जाएगा। कभी अपने सुखों को अपने पास मत रखो, एफ.डी. करो ठाकुर के चरणों में। हे हरि, हम से ये पर्दा नहीं हटेगा। और हम से हो सके ऐसा सामर्थ्य भी हमें मत देना क्योंकि ये सामर्थ्य, हमारी पात्रता नहीं होगी तो हमें अहंकारी बना सकता है। 'लज्जते गम बढ़ा दीजिए।' हे हरि, हमें दुःख देना ताकि हमें दुःख की लज्जत आए, पीड़ा का प्रसाद महसूस हो। यही तो कुंता ने मांगा था 'महाभारत' में कि हे ठाकुर, मेरे कदम में इतने-इतने कष्ट दे ताकि तेरी स्मृति टूटे ना। इसके लिए साहस चाहिए। और समर्थ है उसको भी यही मांग करनी चाहिए क्योंकि आप समर्थ है लेकिन वो उदार है। शे'र सुनिए -

एक समंदर ने आवाज़ दी,

हम को पानी पीला दीजिए।

समंदर समर्थ है। ये होश आए हम में कि इस पावन पृथ्वी को हम ओर एन्जोय कर सके। कैसे भी घटनाएं जीवन में घटे, ठाकुर देख रहा है, ऐसा सोचना। 'फ़राज़'साहब के दो शे'र है-

कुछ न किसी से बोलेंगे।

तन्हाईयों में रो लेंगे।

निंद तो क्या आएगी 'फ़राज़'?

मौत आई तो सो लेंगे।

पोज़िटिव दर्शन है। वो निंद तो फिर कोई नहीं तोड़ पाएगा! कोई शिकायत नहीं। जीवन का पूरा का पूरा स्वीकार मुश्किल है। ये तभी हो सकता है कि संभालनेवाला बहुत उदार हो। 'को जाँचिये संभु तजि आन।' कौन है ऐसा दुनिया में जिसके पास याचना करें? दाताओं से मत मांगना, उदारों से मांगना। भले एक पैसा उसके पास न हो। मैं ऐसे भगवानों की खोज में हूं। हमारे एक बड़े साहित्यकार करशनदास माणेक, आप की बड़ी

प्रसिद्ध कविता थी -

ते दिन आंसुभीनां रे

हरिनां लोचनियां में दीठां!

जीर्ण, अजीठुं, पामर, फिक्कुं, मानवप्रेतसमाणुं,

कृपण कलेवर कोडभर्युं ज्यां मांडवडे खडकाणुं;

जीर्ण अजीठुं मानव मंदिरना पगथिये छे और हम आरतीओं में घंटनाद किए जा रहे हैं! करो, खूब करो, लेकिन किसी की पीड़ा अनसुनी न हो। और सेवा करो तब भेद मत करो। हम कितने संकीर्ण हैं! सेवा करते हैं तो तोलमाप से करते हैं!

बाप, समर्थ वो है जो हमें उदार माने। उदार के पास याचना की जाए। बिलग-बिलग जो भगवानतत्त्व को समझने के इशारे मिल रहे हैं उसको मैं पकड़ रहा हूं। तीन लक्षण भगवान के। पहला लक्षण भगवता का, दीन-दयालु। दीन-दयालू का मतलब फिर ये नहीं कि कोई रांक है उस पर ही दया करता है। दीन मानी सब कुछ हो लेकिन जिसके विचार दुर्बल है उस पर भी दया करे। जिसके विचार कमजोर है वो दीन है। गांधीबापू ने कहा था, दरिद्रनारायण की सेवा करो। तो मैं एक गांधी संस्था में बोल रहा था, कौन दरिद्र? कुछ वस्तु न होने का मतलब यदि दरिद्रता है तो जिसके पास ईमानदारी नहीं है वो दरिद्र है; जिसके पास मूल्य की महक नहीं है वो दरिद्र है; उदारता नहीं है वो दरिद्र है। जिसके पास विद्या है लेकिन विनय नहीं है, दरिद्र है। जिसके पास सत्ता है लेकिन सत् नहीं है, दरिद्र है; पद है लेकिन पादुका नहीं है, दरिद्र है। कौन दरिद्र है? चार प्रकार के भक्त है आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी; वहां 'दीन' शब्द, दूसरे अर्थ में बड़ा प्यारा लगेगा। लेकिन ये चार भक्तों में दीनता बहुत आवश्यक है। आर्त हंमेशा दीन होता है, तो ही आर्त है। ज्ञानी को दीन होना चाहिए। और जिज्ञासु को भी किसी के पैर पकड़ने पकड़ते हैं। और अर्थार्थी को कुछ स्वार्थ सधाना हो तो भी दीन ही बनना पड़ता है। और शंकर कौन है? मंगलाचरण के बाद के सोरठे में तुलसी क्या लिखते हैं?

कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन।

जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन।।

कौन है शिव? जो दीन पर दया करता है। भक्त में दीनता हो वो अद्भुत है। प्रार्थना में दीनता हो।

तो, परमात्मा है दीनदयालु, इसलिए शिव को भगवान कहा। पहला लक्षण, दीनदयालु। 'मानस' की कितनी चौपाई दीनतावाली मिलेगी!

दीन दयाल बिरिदु संभारी।

हरहु नाथ मम संकट भारी।।

●

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।

हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी।।

और दीनता स्वाभाविक होनी चाहिए, नकली नहीं चलती। बार-बार 'थेन्क यू' कहे वो नकली दीनता! दीनता दिल की हो। दीनता का अपना एक सामर्थ्य होता है, ये कमजोरी नहीं है। दीनता स्वभाव है, स्वभाव बदला नहीं जाता। स्वभाव को योजना बनाकर लाना भी मुश्किल और बदला जाना भी मुश्किल। मेरा वक्तव्य कायम रहा है कि कांटा चूभता है तो वो उसका अवगुण है ऐसा मत मानो, स्वभाव है। और फूल खुश्बू देता है वो उसका सद्गुण है ऐसा मत मानना, वो उसका स्वभाव है। भगवान कृष्ण कालिनाग का स्वभाव नहीं बदल पाया। सत्संग से स्वभाव में थोड़ा परिवर्तन हो सक्ता है, ऐसी एक चौपाई है-

गई बहोर गरीब नेवाजू।

सरल सबल साहिब रघुराजू।।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।

पारस परस कुधात सुहाई।।

सठ को तो थोड़ा सुधारा जा सकता है, तुलसीदासजी कहते हैं, लेकिन जो ख़ल है उसको सुधारना मुश्किल है। ख़ल का भलपना कितनी देर टकेगा? ख़ल का जन्मजात मलिन स्वभाव मिटाना बहुत कठिन है। आदमी को कायम सोचना पड़ता होता है कि हम कहां तक पहूंचे? हमारे प्राचीन समय में दो साधक मिलते थे तब पूछते थे, भजन कितना बढ़ा? अंत:करण की शुद्धि कितनी बढ़ी? ये पूछा जाता था। दो श्रोता मिले तब ऐसी चर्चा होनी चाहिए। भजन मानी दूसरों के लिए समर्पित होने का सद्भाव।

बाप, हमारा भलपन शायद अवसरवादी है। ठाकुर रामकृष्ण कहा करते थे कि बिल्ली को मखमली पोशाक पहनाओ और चांदी के सिंहासन पर बिठाओ, उसके भाल में केसरवाला तिलक करो, सोने का कंगन पहनाओं, दूध का कटोरा रख दो लेकिन ये बिल्ली की समस्त सभ्यता कब तक? जब तब चूहे को नहीं दिखती! इतने में एक चूहा निकला और समग्र सभ्यता इतर-बितर हो गई! बहुत समय लगता है स्वभाव परिवर्तन में। इसलिए कृष्ण ने कहा, मैं ईश्वर हूं फिर भी स्वभाव नहीं बदल सकता। स्वभाव थोड़ा-बहुत बदलना है तो सत्संग में भेज दो। वहां थोड़ा फ़र्क हो सकता है। दीनता स्वाभाविक हो।

भक्त की पीडा को मिटानेवाला भगवान है। भगत कौन वो मैं आप के सामने चार प्रकार के भगत की चर्चा कर चूका हूं। लेकिन भगत यदि होना है तो पहला तो आदमी में साहस होना चाहिए कि कूद पड़ो। 'जगत मिथ्या है कि सच है?' 'वास्तविक्ता क्या है?' 'आदर्श कौन है?'-ऐसा कुछ मत सोचो, हरि भजना शुरू कर दो। वेदांत बाद में आता है। एक के बाद एक स्टेशन अपने आप आएगा। पहले कूदो। कोई कहे कि पहले मुझे तैरना आ जाए फिर मैं पानी में कूदूं! ऐसा हो सकता है? इसलिए एक परम उदार के भरोसे पर भक्ति साहस का नाम है। ज्ञान में जानना पहले होता है, भक्ति में मानना पहले होता है। कूद पड़ो, भय लगता है तो 'राम'नाम पकड़ लो, भय से रामनाम आरंभ हो तो भी बुरा नहीं। भय से भजन में कूद पड़ो तो उस भक्ति का नाम होगा आर्त भक्ति। भय से होती है आर्त भक्ति। भय लगे तो 'हाय हाय' मत करो, 'हरि हरि' करो। बिलकुल दीनता से आरंभ करना पड़ता है। गंगासती ने लिखा है-

भक्ति रे करवी एणे रांक थईने रहेवुं ने,
मेलवुं अंतरनुं अभिमान रे;
सद्गुरु चरणमां शिश नमावी,
कर जोडी लागवुं पाय रे...

हिंमत मिलती है रामकथा से। भय से शुरू की हुई भक्ति का नाम है आर्त भक्ति। भक्ति में रूपांतरित हो जाता है भय। लोभ से कूद पड़ो। लोभ से की गई भक्ति अर्थार्थी है।

साधक नाम जपहिं लय लाएँ।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ।।

गोस्वामीजी कहते हैं, साधकभाव से जो हरिनाम जपना शुरू करेगा उसको अणिमादिक सिद्धि चाहिए, मिलेगी। लोभ से शुरू की गई भक्ति अर्थार्थी भक्ति है। आखिर में लोभ छूटने लगेगा। चित्त ड़ामाडोल है, कुछ जानना है तो कूद पड़ो। हो जाएगी जिज्ञासु भक्ति। और ऐसे करते-करते यदि पा लिया, तसल्ली हो जाए तो समझ लो, हो गई ज्ञानी भक्ति।

तो, वो भगवान है जो भक्त की आरति हरे। भक्त की आरति जाती है तो पूरा समाज सुखी होता है। आप कहेंगे कैसे? परिवार में एक व्यक्ति बीमार हो, पूरा घर बीमार होने लगता है। और परिवार में वो व्यक्ति ठीक हो जाए तो सब ठीक हो जाए। एक भगत आरत भक्ति करने लगता है तो पूरे समाज को फायदा होने लगता है। एक नरसिंह ने धन्य कर दिया; एक जलाराम बापा ने धन्य कर दिया। 'रामचरित मानस' का आलेख है-

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत।।

कल हमने 'बालकांड' को अति संक्षेप में विराम दिया। अब 'अयोध्याकांड' का आरंभ होता है। यद्यपि तुलसीदासजी ने 'सोपान' शब्द कहा है। 'अयोध्याकांड' के मंगलाचरण में भगवान शिव को याद किया है। क्यों? मेरे भाई-बहन! 'अयोध्याकांड' को ब्रह्मलीन पूज्य डोंगरेबापा 'जुवानी का कांड' कहते थे। युवानों को संकेत है। गोस्वामीजी का शायद ये हम सब के लिए ईशारा कि हे युवान, युवानी में तेरी शादी होगी तो शिव का दर्शन करते-करते ये सीखना कि भगवान शिव ने अपनी पार्वती को जिस तरह आदर दिया है ऐसा तू घर में आदर देना। मर्यादा न टूटे। ये सुंदर दाम्पत्य का नमूना है। लेकिन तुरंत संकेत करते कहा कि शंकर की जटा में गंगा है। हे युवान, विवेक की गंगा अपने मस्तिष्क पे धारण करना। महादेव के कंठ में विष है। दुनिया में ज्यादा से ज्यादा निंदा युवान की होती है। ज्यादा से ज्यादा जहर उसको पीना पड़ता है। तुलसी संकेत करते हैं कि हे युवानों, युवानी में तेरी बहुत आलोचना होगी तब तुझे जहर पीना पड़ेगा तो जहर को पेट में भी मत उतारना और उसका वमन भी मत करना, तेरे कंठ की शोभा बनाना। अथवा तो आलोचना को भी स्तुति की तरह आकंठ पीना।

आभूषणों में सर्पों के गहने हैं। कवि 'कलापी' ने लिखा है, 'जे पोषतुं ते मारतुं एवो दिसे क्रम कुदरती।' जो पोषता है वो ही मारता है। हे युवक, तू आभूषण पहन लेकिन सावधानी रख कि ये भूषण भुजंग बनकर तुम्हें डंस न ले। कोई युवक अच्छे कपडें-गहनें पहने तो धर्म को उसकी आलोचना नहीं करनी चाहिए, उसको सावधान करना चाहिए। विवेक सिखाना धर्म का क्षेत्र है। भगवान शंकर ने विभूति का लेपन किया है। दो अर्थ; एक अर्थ, शरीर भस्म है उसका स्मरण रहे। दूसरा, ये शरीर का तू सदुपयोग करेगा तो तू ऐश्वर्य पाएगा। विभूति मानी

ऐश्वर्य।

तो, शिव का दर्शन 'अयोध्याकांड' के आरंभ में किया। विश्व की युवानी को ये कुछ ईशारे किए गए। दूसरे श्लोक में वहां भगवान राम की चित्तवृत्ति की बात है। राज मिलने की बात आई तो प्रसन्नता नहीं हुई और वन में जाने की बात आई तो ग्लानि नहीं हुई। दोनों समय जिसका चित्त समान रहा ऐसे रामभद्र को याद किया है। फिर सीतारामजी की वंदना है। और फिर गुरुस्मरण के दोहे से 'अयोध्याकांड' का आरंभ होता है। ये भी मुझे सांकेतिक लगता है कि युवानी में कोई गुरुआश्रय चाहिए। जो हमें समय-समय पर राह दिखाए।

भगवान राम ब्याह कर आए हैं। अयोध्या में नितनूतन मंगलता बढ़ी। जगतभर के सुख अयोध्या में केन्द्रित हो चुके थे। गोस्वामीजी का ये निवेदन जरा विचार करने जैसा है, 'सब बिधि सब पुर लोग सुखारी।' नगर के सब लोग सब प्रकार से सुखी हो गए। ये मुश्किल है। दुनिया के सब लोग सब प्रकार से कभी सुखी नहीं हो सकते। कोई नहीं कह सकता कि मुझे सब प्रकार का सुख है और शायद किसी को हो तो सब लोग नहीं कह सकते। कभी-कभी हम मान लेते हैं कि हमें सब प्रकार का सुख है। सुख-दु:ख सापेक्ष है। मेरा ऐसा मानना है कि आप को जितना सुख मिलेगा इतना ही दु:ख भी होगा। ये तो सुख की शराब हमें थोड़ी बेहोश रखती है इसलिए दु:ख की जो मुखर होनेवाली पीड़ा है वो समझ में नहीं आती। सुख का नशा दु:ख से हमें अनभिज्ञ रखता है। नशा दु:ख भुलाता है। लोग क्यों शराब पीते हैं? और ध्यान देना, 'व्यसन' का संस्कृत में अर्थ होता है, दु:ख। आप यदि दु:ख की शराब पी लेते हैं तो आप के पास जो सुख है वो आप को अनुभव में नहीं आता।

तो, सब प्रकार का सुख सब लोगों को हो गया तो समझ लेना चाहिए कि यही सब लोगों को सब प्रकार के सुख की जगह सब प्रकार के दु:ख आने की तैयारी है! और ये घटना घटी। राम को राजा होना था और राम वनवासी करार दे दिए गए! मुझे और आप को सत्संग ऐसा विवेक प्रदान करता है कि हम सुख-दु:ख दोनों के मध्य में रह सकते हैं।

कथा से आप परिचित है। महाराज दशरथजी एक बार दरबार में बैठे थे तब सफेद बाल देखे और लगा कि बूढ़ापा आ चूका है। कान में बुढ़ापा गुरुमंत्र दे रहा है। समाज के सभी दशरथों को चाहिए कि जब एक उम्र हो जाए तब अपने जुवान संतति को थोड़ा-थोड़ा देते जाओ। दशरथजी ने फैंसला किया कि राम को राज दे दें। गुरुदेव ने अनुमति दी लेकिन दशरथजी ने कहा, तैयारी करनी है तो कल दें? ये कल की बात चौदह साल रामराज्य को दूर कर देती है! मंथरा ने कैकेयी की बुद्धि घुमा दी। दशरथजी के पास कैकेयी ने दो वरदान मांगे और राम-जानकी-लक्ष्मण तीनों दशरथजी के पास जाकर वन के लिए तैयार होते हैं। जीवन की यात्रा ऐसी ही होती है, एक पल में क्या से क्या हो जाए!

तमसा नदी के तट पर पहला रात्रि मुकाम हुआ। लोग शोक और श्रम के कारण तमसा के तट में सो गए। राम-लखन-जानकी और सुमंत जाग रहे हैं। रामजी ने सुमंतजी को कहा कि आप रात के अंधेरे में रथ चलाओ ताकि कोई हमें देखकर पीछे न आए। रथारूढ़ राम-लखन-जानकी और सुमंत निकल गए। सुबह होती है और नगरवासीओं ने देखा कि तमसा का तट रामविहीन है! फिर जो वो लोगों का आक्रंद है! एक वस्तु याद रखिए, 'रामचरित मानस' में साहित्य का नवों रस है लेकिन 'रामचरित मानस' आंसू में डूबोकर लिखी गई मंत्रात्मक चौपाईओं का ग्रंथ है।

यहां भगवान का रथ शृंगबेरपुर पहूंचता है। प्रभु ने केवट से गंगा पार किया। गंगा के तट पर एक रात्रि मुकाम। यात्रा आगे बढ़ी। वहीं से प्रभु वाल्मीकि के आश्रम में आए। वाल्मीकि ने रामजी को रहने के लिए चौदह जगह बताई; भक्त के चौदह प्रकार के अंत:करण दिखाएं। प्रभु चित्रकूट पधारे।

सुमंत लौटता हैं। महाराज दशरथजी का प्राणत्याग! भरतजी आए। दशरथजी का संस्कार हुआ। और फिर बहुत आवश्यक सभा हुई। आखिर में भरत ने कहा कि मैं सत्ता का आदमी नहीं हूं, मैं सत् का आदमी हूं; मुझे पद नहीं चाहिए, मुझे किसीकी पादुका चाहिए। यदि मुझे जिन्दा रखना चाहते हैं तो हम सब चित्रकूट जाए। और वहां ठाकुर की जो आज्ञा होगी वो मैं शिरोधार्य करूंगा। पूरी अवध चित्रकूट की यात्रा करती है। जनकपुर भी आया। बहुत बड़ी सभाएं हुई। आखिर में एक निर्णय हुआ; प्रेम स्वीकार कर लेता है, दबाव नहीं डाल सकता। भरतजी ने स्वीकार करते हुए कहा -

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।

करुना सागर कीजिअ सोई।।

भक्त पूरा का पूरा समर्पण कर देता है कि प्रभु, आप का मन जिस प्रकार प्रसन्न रहे, आप वो ही करे। निर्णय हुआ कि राम वन में रहे, भरत अवध जाए।

भरत अवध पहूंचे। धीरे-धीरे सब शांत होने लगा। और फिर एक बहुत करुण प्रसंग जिसे हर वक्त मैं छूता हूं। एक दिन भरत वसिष्ठजी के पास गए। चरण में प्रणाम किया, 'गुरुदेव, आप आज्ञा दे तो मैं नियम-व्रतों के साथ नंदिग्राम में कुटियां बनाकर रहूं? वल्कल पहनूं?' वसिष्ठजी बहुत पहूंचे हुए महापुरुष है; कहा कि 'आज तुम्हारे ये वक्तव्य को सुनकर लगता है कि हमनें आज तक धर्म की चर्चा ही की, तूने पहलीबार आज हमें धर्म का सार बताया। जाओ, लेकिन माँ कौशल्या की आज्ञा लेना। यदि माँ का दिल दूभ गया तो तेरी रामभक्ति सफल नहीं होगी।' भरतजी आते हैं। एक क्षण में माँ निर्णय करती है। उसने सोच लिया कि भरत को यदि मना करेंगे तो वो चौदह साल जीए न जीए खतरा है! और भरत को कुछ हो गया तो राम को क्या मूंह दिखाऊंगी? 'जाओ बेटे, तुम्हारी रामभक्ति सफल हो।'

समपर्ण और त्याग का मारग सदैव ऐसा होता है। जीवन में अगर किसी से स्पर्धा करनी हो तो त्याग और समर्पण की करना। ये ('रामचरित मानस') समर्पण का शास्त्र है। ये केवल हिस्ट्री नहीं है, ये विश्व की बहुत बड़ी मिस्ट्री भी है। उसमें एन्ट्री ही है, एक्ज़िट है ही नहीं। भरत नंदिग्राम गए। भरत का जप-तप देखकर बड़े-बड़े मुनि शरमिंदे होने लगे! अमृत मिलता है त्याग से। भरत का चरित्र बताकर गोस्वामीजी 'अयोध्याकांड' समाप्त करते हैं।

गांधीबापू ने कहा था, दरिद्रनारायण की सेवा करो। मैं एक गांधी संस्था में बोल रहा था, कौन दरिद्र? कुछ वस्तु न होने का मतलब यदि दरिद्रता है, तो जिसके पास ईमानदारी नहीं है वो दरिद्र है; जिसके पास मूल्य की महक नहीं है वो दरिद्र है; उदारता नहीं है वो दरिद्र है; जिसके पास विद्या है लेकिन विनय नहीं है, दरिद्र है; जिसके पास सत्ता है लेकिन सत् नहीं है, दरिद्र है; पद है लेकिन पादुका नहीं है, दरिद्र है। कौन दरिद्र है? चार प्रकार के भक्त है आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी; ये चार भक्तों में दीनता बहुत आवश्यक है। और दीनता स्वाभाविक होनी चाहिए, नकली नहीं। बार-बार 'थेन्क यू' कहे वो नकली दीनता! दीनता दिल की हो।

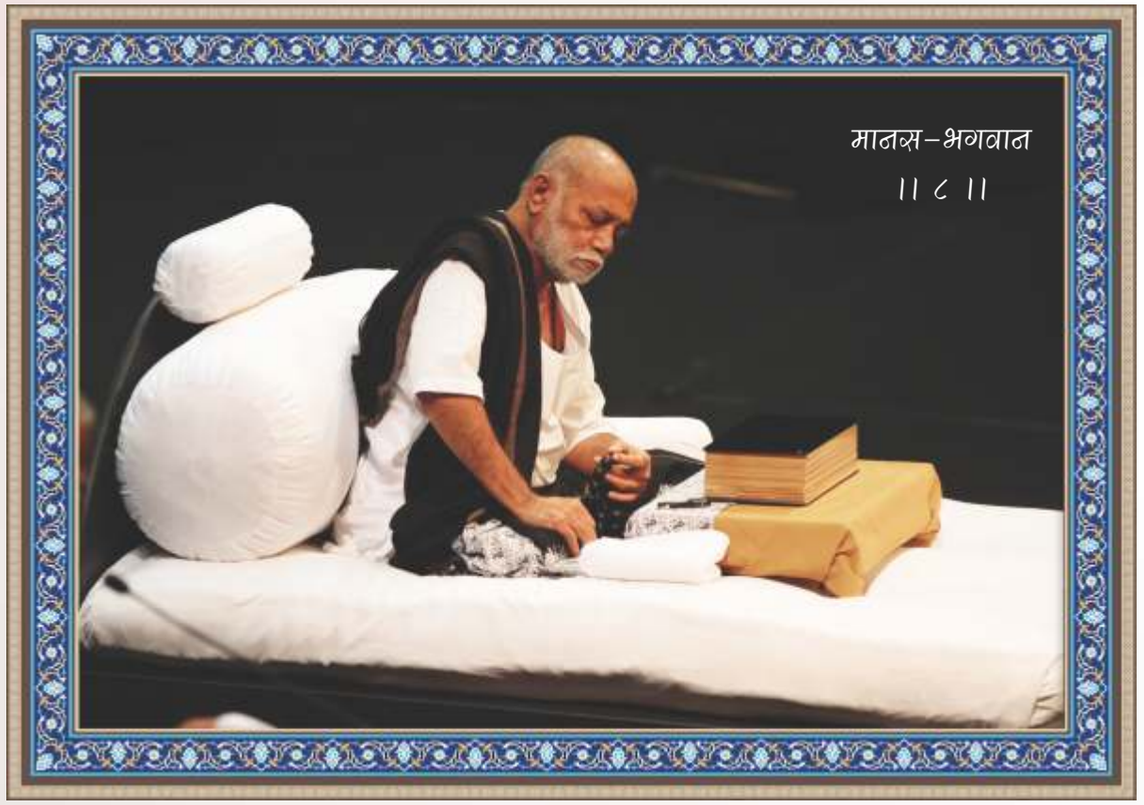

निरंतर हरिनाम चालु हो ऐसा भजनानंदी भगवान है

'मानस-भगवान,' जिसकी कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में हो रही है। कल जब प्रश्नोत्तरी थी तब एक बेटी ने मुझे प्रश्न पूछा था कि 'जैसे अवतार बार-बार आते हैं, सिद्धपुरुष आते हैं, ऐसे ओर भी जो आना चाहते हैं वो आते हैं?' मैं आप को प्रमाण नहीं दे सकता। यदि मुझे पक्का प्रमाण मिले तो मैं जरूर सार्वजनिक करूंगा लेकिन अभी मैं प्रमाण के साथ ये पेश नहीं करता, इस बात को आप ध्यान में रखे। लेकिन मेरी अंत:करण की प्रवृत्ति मुझे बचपन से दस्तक दे रही है कि यहां बार-बार आया जाता है। और मेरे इस अनुभव को जगद्गुरु शंकर भी समर्थन देते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो क्यों कहा जाता, 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं।' दूसरा मुझे बल मिलता है, 'रामचरित मानस' के परम बुद्धपुरुष बाबा कागभुशुंडि का। आप 'मानस' में कहते हैं कि 'बहुत जनम कै सुधि मोहि आई।' बाप, साधना में ऐसा कहा जाता है कि आदमी गुरुकृपा से जितना रिवर्स जाता है उतना अपने वर्तमान स्वरूप को पा सकता है; और फिर गतजन्मों की यात्रा भी उसकी स्मृति में आ सकती है। और ये जगत का करीब-करीब न्यानबे प्रतिशत नियम ऐसा है कि आता है तो जाना भी होता है और जो जाता है वो आ भी सकता है। आप अवतारों की शृंखला में देखिए कि राम तो विशुद्ध ब्रह्म है लेकिन उसके साथ जो तीन भाई आए।

'जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं।'

ऐसा उल्लेख है। विभु आता है, वैसे उसके साथ उसकी विभूतियां भी आती है। अंशी आता है तो अंश भी आता है। जैसे हम जाए तो हमारा सामान साथ-साथ जाता है, और जब हम आते हैं तब वोही सामान, ईधर-उधर थोड़ा कर लेते हैं लेकिन लेकर आते हैं। मेरा ऐसा मानना है, जैसे ब्रह्म आता है तो उसकी मंडली लेकर आता है, वैसे जब कोई बुद्धपुरुष आता है तब अपने निजजन को लाता है। आप गुरुनिष्ठा में पूर्णत: आश्रित है और आप की निष्ठा मोक्ष की नहीं है और आप के बुद्धपुरुष की भी निष्ठा मुक्ति की नहीं है, वो बार-बार आना चाहता है और हम ऐसे किसी बुद्धपुरुष के शरण में बिलकुल सौ प्रतिशत समर्पित है, तो वो आप को लेकर आएगा। यस, ऐसा मुझे फ़िल होता है। ये मेरी फ़िलिंग है। हिन्दी न समझ सके तो मेरी फ़िलिंग तो समझ सकते है ना! और समझना केवल फ़िलिंग है, हिन्दी समज़ोगे तो भी आप अपनी ख़िडकी जितना अर्थ करोगे। बुद्ध के जीवन में एक घटी घटना है।

बुद्ध एक बार अपनी सायंकालीन सभा का विसर्जन करते हुए शिष्यों को कहते हैं, अब रात्रि का अंतिम कार्य कर के सब विश्राम करे। उसमें एक साधक जो सुनने आया था, वो चोरवृत्ति का था, उसने सोचा कि भगवान बुद्ध ने कहा कि रात का अंतिम कार्य करके विश्राम करो, तो पहले चोरी कर लूं! और कर ली, फिर सो गया! बुद्धपुरुषों के वचनों का हम अपनी ख़िड़की जितना अर्थघटन करते हैं। एक शिष्य उस सभा में था, उसने इसका अर्थ ये लगाया कि बुद्ध ऐसा कहते हैं कि रात का अंतिम कार्य है ध्यान। ये बौद्धों की रीत है। रात में ये लोग ध्यान करके सोते हैं। झेन परंपरा कहती है कि ध्यान कोई क्रिया है ही नहीं। प्लीज़ एटेन्शन। 'अक्रिय ध्यान', जहां कुछ नहीं करना है। मैंने कथा को 'प्रयोगशाला' कहा है और प्रयोगशाला में कुछ करना होता है। लेकिन वो भी प्रयोग का समय हो तब तक। फिर कथा में भी कुछ मत करना। कथा ध्यान हो जाएगी। कथा में तुम कहो कि ये हो, ये हो-ये अच्छा है, यद्यपि इससे रस की ग्रंथियां खुलती है ओर कुछ नहीं होता। हमारे में जो रस पड़ा है ओलरेडी वो खुलने लगता है, ये जरूरी है अध्यात्म में। अध्यात्म किसी को नीरस होने का उपदेश नहीं देता। सच्चा अध्यात्म आदमी को भीगा बनाता है। लेकिन एक समय ऐसा भी आए कि कुछ नहीं। मैं प्रतीक्षा में हूं कि तीन घंटा मैं बैठा रहूं, आप बैठे रहे और कथा हो जाए! बोलने में तो कितना बोला जाए?

हमारे एक महापुरुष थे, स्वामी शरणानंदजी। वो तो कहते थे, असली सत्संग है मूक-सत्संग। और मुझे लगता है, मौन में तो पांच मिनट भी पांच जनम का फल देती है। जिसस ज्यादा बोले हैं क्या? मुझे तो लगता है, वो जितना बोले हैं उसका बाद में विस्तार हुआ होगा। और विस्तार में फिर सब ने अपनी-अपनी बातें डाली होगी! कुछ बातें मैं पढ़ता हूं तो मैंने जिसस को जिस तरह पहचाना उस स्वभाव के अनुकूल नहीं लगती मुझे। मेरी कोई भी बात का आप अर्थघटन करे तो आप यदि बहुत तटस्थ है तो ही न्याय दे पाओगे, वर्ना आप अपनी कुछ बात डाल दोगे। अहोभाव होगा तो अर्थवाद करोगे और अधोभाव होगा तो आलोचना करोगे। उसमें 'मोरारिबापू' प्रगट नहीं हो सकता।

कल एक बहन ने स्थितप्रज्ञवाली बात भी पूछी। मेरी व्यासपीठ उसको प्रज्ञा कहेगी कि जो हमें कभी ईधर-उधर न होने दे। चार स्तर है। एक को हम 'मति' कहते हैं। दूसरे को हम 'बुद्धि' कहते हैं। तीसरे को हम 'मेधा' कहते हैं। चौथे को हम 'प्रज्ञा' कहते हैं। मति के दो भेद है-सुमति और कुमति। मति सु भी हो सकती है, कु भी हो सकती है। युवान भाई-बहन, तुम्हारी मति ओलरेडी आई है माँ से, जनम लेने से ही

हमारे पास एक मति है। लेकिन कुसंग के कारण वो कुमति बन जाती है, सुसंग के कारण वो सुमति बन जाती है। इस मति को ठीक करने के लिए 'रामचरित मानस' में कोई उपाय है? है -

जनकसुता जग जननि जानकी ।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की ।।

ताके जुग पद कमल मनावउँ ।
जासु कृपाँ निरमल मति पावऊँ ।।

'मानस'कार कहते हैं, माँ जानकी की मैं इसलिए प्रार्थना करता हूं ताकि मेरी मति सुमति हो। ध्यान देना, बाप मति को सुमति नहीं कर सकता, माँ ही कर सकती है। इसलिए मेरे देश के उपनिषदों ने 'मातृ देवो भव।' पहले कहा।

उसके बाद आती है, बुद्धि। बुद्धि है वो अंत:करण का एक विभाग है। जैसे हम बोलते हैं, ये बहिर्करण है, वैसे अंत:करण है। 'करण' मानी इन्द्रिय। अंत:करण के चार विभाग है, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। जैसे व्यक्ति का एक अंत:करण होता है, वैसे समग्र विश्व का भी एक अंत:करण होता है। बुद्धि के लिए एक शब्दप्रयोग किया जाता है, 'व्यभिचारिणी।' बुद्धि को यदि विकसित करना है तो पढ़ो। जिस क्षेत्र की आप पढ़ाई करते हो वो पढ़ो, बुद्धि विकसित होगी। शिक्षक चाहिए जो हमारी बुद्धि को विकसित करे। कितना अननोन रह जाता है पढ़े बिना!

उसके बाद एक पड़ाव आता है, मेधा। हरेक संशय जब समाप्त हो जाए उसी बुद्धि को मेधा कहते हैं। जहां कोई संशय न रहा। हम शायद बुद्धिवान होते हैं लेकिन मेधावी नहीं होते, क्योंकि संशय है। और संशय हो तो विनय से पूछो, लज्जा मत रखो, संकोच मत रखो। विनय जरूरी है। बुद्धि की एक ऐसी यात्रा जहां समस्त संशय खतम हो जाते हैं। ये मुश्किल है। हमारे जैसे तो करीब-करीब मति तक ही ठहरे रहते हैं। मेधा तक जाना तो बड़ा मुश्किल है। वो तो गरुड पहूंचा। एक के बाद एक पड़ाव सर करता है गरुड। वो कहता है, 'गयउ मोर संदेह।' और मुझे कहने दो, प्रज्ञा; जैसे वेपारी नहीं रहा वहां कि जो मूर्ति का भाव-ताल करे अथवा ग्राहक नहीं रहा कि मूर्ति को भटकाए! वेद के मंत्रों के साथ उस मूर्ति किसी मंदिर में प्रस्थापित हो, वैसे प्रज्ञा तब मानी जाती है। ये हमारे करने से नहीं होती प्रतिष्ठित; उसकी कोई प्रतिष्ठा कर दे। मेरा अनुभव है कि प्रज्ञा की प्रतिष्ठा केवल गुरुकृपा से होती है।

तो, आप स्थितप्रज्ञ के बारे में कल पूछ रहे थे। हमारी प्रज्ञा बिलकुल किसी की कृपा से प्रतिष्ठित हो जाती थी उसके बाद कई आक्रमण हुए मूर्तिभंजकों के। ध्यान देना, प्रज्ञा जब प्रतिष्ठित हो जाती है तब भी साधक सावधान रहे क्योंकि प्रज्ञा को विचलित करनेवाले बहुत से परिबल पैदा होते हैं! कभी हरख, कभी शोक; कभी संयोग, कभी वियोग; कभी स्तुति, कभी निंदा। ये सब परिबल है। प्रतिष्ठा हो जाए तो वो प्रज्ञा है। और मेरा अनुभव ये है। आप की समझ ओर हो तो मैं उसका भी आदर करूंगा। कोई बुद्धपुरुष के द्वारा प्रतिष्ठित हो, वर्ना कैसे हम यहां तक पहूंचे?

तो, अहोभाववाले अर्थवाद करके किसीकी प्रतिष्ठा को बहुत बहका देते हैं! अधोभाववालें उसे गिराने की कोशिश करते हैं! सहीतत्त्व प्रगट नहीं हो पाता। गांधीजी ने आत्मकथा लिखी, तो उसको जो कहना था वो लिखा। अब, उस पर भाष्य होते हैं तो गांधीभक्ति उसमें मिल जाती है! गांधी नहीं रहता वहां! हम क्यों एक-दूसरों की तुलना करते है? सब अपनी-अपनी निजता में अप्रतिम है। व्यक्ति डेवलप उसकी निजता में ही होना चाहिए।

तो, प्रज्ञा बुद्धपुरुष प्रतिष्ठित करते हैं। हम क्यों चाहते हैं कि किसी बुद्धपुरुष का हाथ हमारे सिर पर रहे? ये भारत की बड़ी अनोख़ी प्रथा है। ऐसे बुद्धपुरुष, जिसके चरणों में परिपूर्ण जिसकी निष्ठा होती है और जिस बुद्धपुरुष को निर्वाण में रुचि नहीं होती है, वो जब दुबारा आता है तब उसकी मंडली को भी साथ ले आता है। यहां व्यवस्था है; मैं प्रमाण नहीं दे सकता। और कुछ बातें प्रमाणित नहीं की जाती। व्यवस्था है, आस्था होनी चाहिए।

तो, 'मानस-भगवान।' मेरे भाई-बहन, यात्रा करनी हो जीवन की, तो यात्रा का एक व्यवहारु पहलू समझें। किसी साधन से यात्रा करनी हो वो दूसरी बात है, गंतव्य निश्चित होना चाहिए। हमें जाना कहां है? फिर वाहन अपनी क्षमता और रुचि के अनुकूल पकड़ा जा सकता है। साधन की पसंदगी गंतव्य के बाद की जाती है, पहले नहीं। हमारा गंतव्य हरिनाम है? हमारा गंतव्य हरिरूप है? हमारा गंतव्य हरिलीला है कि हमारा गंतव्य हरिधाम है? ये पहले निश्चित करो, उसके मुताबित 'रामचरित मानस' साधन की व्यवस्था करेगा। आप ये निर्णय करे कि मुझे राम तक पहूंचना है, तो फिर तुलसी बताते हैं, चार वाहन है - नाम, रूप, लीला, धाम। भगवान कौन? जो इन चारों में से नाम को चुने।

संतत जपत संभु अबिनासी ।
सिव भगवान ग्यान गुन रासी ।।

एक साधान है मेरे भाई-बहन, और वो नाम। रूप भी साधन है, लीला भी साधन है और गुरु की कृपा हो जाए तो लीला का उस काल में जाकर दर्शन करो। धाम के द्वारा भी हम पहूंच सकते हैं। लेकिन शंकर ने जो पकड़ा है; मेरे सद्गुरु भगवान ने भी मुझे यही पकड़वाया।

मैं आज भगवान की व्याख्या में जिस पंक्ति का आश्रय लिया है उसी पंक्ति से आप के सामने बात करना चाहता हूं कि कौन भगवान? जो हरि का नाम संतत जपता है, तैलधारावत्। शुरूआत में होठ हिले, मणके फिरे, बोलते, स्मरण करते-करते, अंदर की यात्रा शुरू हो जाए और पता भी न लगे और हरिनाम निरंतर चालु रहे। गोस्वामीजी उसको भगवान कहते हैं। मुझे कहने दो, आप को ज़िन्दगी में कोई भजनानंदी मिले तो समझना ये भगवान हैं। चाहे कोट-पेन्ट में हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। किसी के कहने पर भजनानंदी की वो बात मान मत लेना, तुम्हारी आत्मा कहे कि ये भले हमारे से बात करता है लेकिन अंदर का भजन चालु है, ये आदमी हमें देख रहा है लेकिन उसकी आंखें जप कर रही है, तो उसको भगवान कहना। भजनानंदी का मेरा मतलब नहीं कि एकतारा उपर भजन गाता रहे; नहीं, एक अंदर धारा कुछ बिलग हो। और बुद्धपुरुषों को पहचाना नहीं जाता। 'मासुम' गाज़ियाबादी की एक गज़ल -

तुमने देखा न भाला तुम्हें क्या पता?
कैसे दिल को संभाला तुम्हें क्या पता?

हमनें न तो उसको देखा है, न अनुभव किया है, तो उसके हृदय के भावों को हम कैसे जाने?

ख्वाहीशों को तो दिल से निकाला मगर,
कैसे-कैसे निकाला तुम्हें क्या पता?

मेरे श्रोता भाई-बहन! कभी कोई ऐसा भजनानंदी मिल जाए तो समझना ये भगवान है। शंकर भगवान है इसलिए कि वो निरंतर जप करते हैं, किस बारे में?

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती ।
सादर जपहु अनँग आराती ।।

पार्वती कहती है कि मेरा प्रभु रात-दिन हरि स्मरण करते हैं। और सब से निकट हो वोही तो जान पाते हैं। ज्यादा विस्तार न करूं।

'अविनाशी।' रूप अविनाशी नहीं है, स्वरूप अविनाशी होता है। ये महसूस कर लिया कि मेरा स्वरूप मरेगा नहीं, मेरा स्वरूप अविभाज्य है, ये जिसने अनुभव कर लिया वो अविनाशी है। और ऐसा अनुभव करनेवाला भगवान है। जिसको स्वरूपबोध हो जाता है वो अविनाशी है और जो अविनाशी है वो भगवान है। अब आगे बढ़ें। तीसरा सूत्र है, शिव। शिव का अर्थ होता है कल्याण। जिसका जीवन कल्याणमय हो। स्वप्न में भी किसी का बुरा न सोचे, जो कल्याणरूप हो गया वो भगवान है। चौथा, ज्ञान। वो भगवान है जो ज्ञान की खदान है, खज़ाना है। हनुमान भगवान हैं क्योंकि 'सकल गुणनिधानम्।' जो सब गुणों का खज़ाना हो वो भगवान। शिव भगवान हैं क्योंकि 'सकल कलागुणधाम।' जिस व्यक्ति में आप में है इससे ज्यादा गुण दिखाई दे वो भगवान है। 'भगवद्गीता' में श्लोक है, भगवान कौन? भगवान के चौदह लक्षण यहां है -

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।

'ये पूरा विश्व मणिओं की भांति सूत्रमय है, मेरेमय है, उन सब में मैं हूं।' कृष्ण कहते हैं, मैं कहां-कहां हूं? तो, कृष्ण ने जो संकेत दिए ऐसा कहीं देखे, उसको भगवान मानो।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।।

'रस मैं हूं।' पानी भगवान है, क्योंकि रस है। मुझे इतना कहकर ही आगे बढ़ना है, जिसके जीवन में रस हो उसे भगवान समझो। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को देखे और प्यार-मोहब्बत का रस न आए तो क्या खाख भगवान? भगवती श्रुति तो कहती है, 'रसौ वे सः।' आप नवरात्रि आती है तो रास लेते हैं। तो रास क्या है? रस; रस क्या है? भगवान। आप को संगीत में रस है तो समझो, वो रस भगवान है। नृत्यरस भगवान है। जहां रस मिले। कथा रसमय है। रस की सृष्टि भगवान है।

आगे, भगवान कृष्ण कहते हैं, सूर्य और चंद्र में जो प्रकाश है वो मैं हूं। सूर्य-चंद्र को तो हम भगवान कहते हैं ही लेकिन जिनकी आंखों में निर्दोषता का प्रकाश हो वो भगवान है। 'वन्दे सूर्यशशांक वह्नि नयनम्।' निर्दोष और शीतल प्रकाश भगवान है। हमारे रस का सब से बड़ा बाधक स्वार्थ है। हमारी आंख की तेजस्विता में जब स्वार्थ आता है तब आंखें बदल जाती है। दो मशहूर शायर के दो शे'र है मेरे पास-

उड़ने दे परिन्दों को आज़ाद फ़िज़ा में 'गालिब,'
जो तेरे अपने होंगे, लौट आएंगे।'

-मिर्ज़ा गालिब

स्वातंत्र्य दो, मुक्तता दो, पकड़े रखने की जरूरत नहीं है। मैं आप को बांध रखूं तो रस नहीं आता, मैं उड़ने देता हूं। लौट आएंगे, लेकिन लौटने में कौन गड़बड़ करता है? स्वार्थ। और अब इकबाल का शे'र-

ना रखो उम्मिद-ए-वफा किसी परिन्दे से,
जब पर निकल आते हैं तब अपने ही आशियाना भूल जाते हैं।

मैंने कई लोगों को देखा कि कथा सुनने आए लेकिन बाद में वोही कथा की आलोचना करे! क्योंकि पर निकल गए! कथा सुन-सुन के वो बोलना सीख़ते हैं लेकिन उसकी ही आलोचना करने लगेंगे! रस नहीं मिलेगा। रस मिलता है ग्रंथिमुक्त चित्त को। ग्रंथिमुक्त चित्त को किसी भी उम्र में रस आता है। रस भगवान है और शीतल प्रकाश भगवान है।

'प्रणवः सर्ववेदेषु' आगे का सूत्र। भगवान कहते हैं, वेदों में प्रणव भगवान है। प्रणव मानी ओमकार। और आकाश में शब्द भगवान है। शब्द को ब्रह्म पर्याय माना गया। मानवी में पौरुष भगवान है। पराक्रम, पुरुषार्थ भगवान है। हम में यदि पौरुष है, ये भगवान है। पृथ्वी में जो गंध आती है वो भगवान है। पवित्र गंध। और कितनी गंध पृथ्वी देती है? गुलाब हो तो गुलाब की खुश्बू। गंधमय है पृथ्वी। सद्गुरु और पीर की खुश्बू भगवान है। तेज, जहां भी तेज दिख़ाई दे, समझो भगवान है। किसी में विद्या का तेज हो, विवेक का तेज हो, समझो भगवान। ये निकट के भगवान चुके तो मुझे नहीं लगता कि दूर का भगवान हमें काम में आएगा!

समग्र प्राणीमात्र में जो जीवन-तत्त्व है वो भगवान है। हम तीन यात्रा करते हैं। माँ के गर्भ से जीवन की यात्रा शुरू करते हैं। फिर जीवन की यात्रा बड़ी लंबी होती है। फिर मरण की यात्रा होती है। मध्य में जो जीवन है, वो भगवान है। तपस्वी में तप भगवान है। किसी में जब तप देखो, सहन करने की शक्ति देखो, समझना भगवान है। जिसस एक क्षण के लिए ये शिकायत करते हैं कि मेरे साथ ऐसा सूलुक क्यों? लेकिन उसके बाद तुरंत कह देते हैं, ये लोग नासमज़ है। समग्र सृष्टि में बीज भगवान है। 'मैं बीजदाता हूं', ऐसा भी एक बार कहा है। एक बीज से पूरी धरती को हरियाली की जाती है। बुद्धिमानो में बुद्धि भगवान है। इतना बड़ा सम्मान! किसी भी साक्षर में आप बुद्धि देखे तो बुद्धि भगवान है। आगे कहते हैं कि बलवानों का बल मैं हूं। 'धर्म से विरुद्ध नहीं लेकिन धर्मसम्मत काम मैं हूं।' इतना प्रेक्टिकल कृष्ण ही हो सकता है! जो प्राकृतिक धारा है, स्वाभाविक-नैसर्गिक है। देहधारीओं में ये सब होना स्वाभाविक है। तो, ऐसे कुछ बिंदुओं को कृष्ण ने छुए हैं वहां भगवान किस-किस को माने उसके कुछ संकेत है। मेरी समझ में यदि भगवान को देखना है तो हर जगह है -

अग जगमय सब रहित बिरागी।

प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।

ये भगवान को पहचानने के लिए तुलसीदास का 'रामचरित मानस' एक बात कहता है, उसकी पहचान का एक मात्र सूत्र है-'पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू।' लकड़ी में अग्नि। कोई लकड़ी बिना अग्नि नहीं हो सकती। और हमारे वेद की शुरूआत अग्नि से होती है। ये देश अग्निपूजक है। 'रामचरित मानस' ने अग्नि की बड़ी महिमा बताई। रामनाम अग्निमय है, 'हेतुकृसान', सूर्य-चंद्र बाद में, पहले अग्नि। सूर्य-चंद्र भी तत्त्वतः अग्नि का ही परिचय है। इसलिए 'मानस' में आप को अग्नि के दर्शन बहुत होंगे -

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा।
जौ लगि करौं निसाचर नासा।।

अरे, भगवान राम का प्रागट्य ही अग्नि से हुआ है! अग्नि मूल में है। तो, हर लकड़ी में अग्नि है। लेकिन

> मुझे कहने दो, आप को ज़िन्दगी में कोई भजनानंदी मिले तो समझना ये भगवान हैं। चाहे कोट-पेन्ट में हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। किसी के कहने पर भजनानंदी की वो बात मान मत लेना, तुम्हारी आत्मा कहे कि ये भले हमारे से बात करता है लेकिन अंदर का भजन चालु है, ये आदमी हमें देख रहा है लेकिन उसकी आंखें जप कर रही है, तो उसको भगवान कहना। भजनानंदी का मेरा मतलब नहीं कि एकतारा उपर भजन गाता रहे; नहीं, एक अंदर धारा कुछ बिलग हो। कभी कोई ऐसा भजनानंदी मिल जाए तो समझना ये भगवान है।

जैसे दो लकड़ी घीसे तो अग्नि प्रगट होती है। ब्रह्मविवेक अग्नि की तरह है, दियासली की कांड़ी घीसो, अग्नि प्रगट होती है। इसका मतलब कि प्रगट होता है तो अंदर है, था। तो, चारों ओर भगवान है। पहचानने की कुछ विधियां शास्त्रों ने हमें बताई है।

आईए, कथा के क्रम में थोड़ा आगे बढ़ें। 'अरण्यकांड' के आरंभ में भगवान राम चित्रकूट से स्थलांतर करना चाहते हैं। राम-लखन-जानकी ने चित्रकूट से प्रस्थान किया। वहां एक प्रसंग आता है कि एक बार राम-जानकी मंदाकिनी तट पर शिला पर बैठे हैं। इन्द्र के बेटे जयंत ने राम की कसौटी करने के लिए कौए का रूप लिया। दूसरे के पवित्र और प्रेमपूर्ण दाम्पत्य में अकारण चंचूपात करे वो हंस नहीं हो सकता, कौआ ही हो सकता है! कौए के रूप में जयंत गलत चेष्टा करता है। भगवान ने कौए के पीछे बान फैंका। जयंत भागता है, पीछे बान है! गया अपने पिताजी के पास। इन्द्र ने अपना द्वार बंद कर दिया। सत्य का द्रोह करे उसे कोई आश्रय नहीं देता। लेकिन फिर बीच में नारदजी मिल गए। और नारद ने कहा, जिसका अपराध किया है उसी के पास जा। अपराध राम का और आश्रय इन्द्र का? हम सब जयंतवृत्ति के लोग हैं! अपराध करते हैं और जाते हैं मंदिरों में! 'कलापी' की पंक्ति याद आती है -

देखी बुराई ना डरुं हुं शी फिकर छे पापनी?
धोवा बुराईने बधे गंगा वहे छे आपनी।

रामकथा राह दिखाती है कि जहां अपराध किया हो वहां माफ़ी मांग लो। फिर राम तो साक्षी है। इस प्रसंग के बाद भगवान को लगा, अब मुझे स्थलांतर करना जरूरी है। इसलिए राम-लखन-जानकी निकले। अत्रि ऋषि के आश्रम में आए। अत्रि ने रामजी की स्तुति की-

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं।।

वहीं से फिर प्रभु आगे निकले। कई संतों को मिलते हुए ये यात्रा अगस्त्य ऋषि के आश्रम में आई। पंचवटी प्रभु आए। उसके बाद शूर्पणखा को दंडित किया गया। ख़र-दूषण की सेना को निर्वाण दिया। शूर्पणखा ने रावण को उकसाया। रावण मारीच को लेकर आता है। जानकी का अपहरण हुआ। जटायु और रावण का द्वंद्व युद्ध होता है। अशोकवाटिका में रावण ने सीता को जतन कर रखा।

यहां राम प्राकृत मानवी की तरह लीला करते हैं। जानकी की ख़ोज करते मिला जटायु। सब कथा सुना दी। प्रभुने जटायु को सारूप्यमुक्ति प्रदान की। प्रभु शबरी के आश्रम में आते हैं। नव प्रकार की भक्ति की चर्चा है। और फिर शबरी योगाग्नि में अपने देह को समाप्त करती है। भगवान शबरी के मार्गदर्शन पर पंपा सरोवर आते हैं। नारद राम का संवाद होता है। 'अरण्यकांड' को यहां पूरा कर दिया। आगे कल बढ़ेंगे।

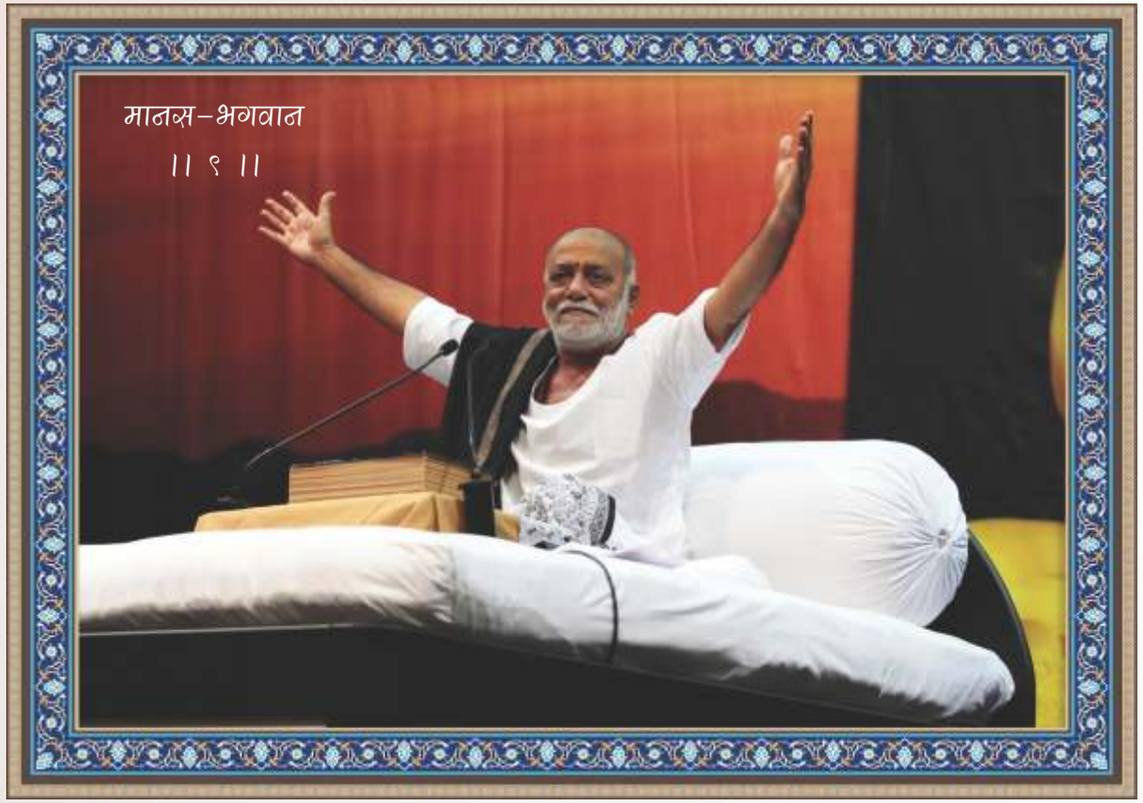

जो हमें विजय दे, विवेक दे और विभूति दे वो भगवान

'मानस भगवान' में हम इस केन्द्रबिंदु की चारों ओर परिक्रमा कर रहे थे; हर एंगल से मानवी में भगवान का दर्शन करने की इस कथा में हमारी विनीत चेष्टा रही। कल तक के कथा के क्रम में पंपा सरोवर तक नारदजी गए, राम से मिले। उसके बाद भगवान आगे बढ़े। मैं सभी युवान भाई-बहनों को कहना चाहूंगा कि 'रामचरित मानस' में आप पाएंगे कि भगवान की यात्रा जब भी होती है, आगे ही हुई है। राम अयोध्या में प्रगट हुए; आगे बढ़े; जनकपुर गए; वनवासी हुए; शृंगबेरपुर गए; ऋषिमुनिओं के पास गए; चित्रकूट गए; पंचवटी गए; पंपासरोवर गए। 'आगे चले बहुरि रघुराया।' राम ने हमें सीखाया है कि निरंतर आगे बढ़ो। हमारा एक युवान कवि है जातुष, उसने एक गज़ल लिखी-

में नदीने जीववानी रीत पूछी'ती,
ए कशुं बोली नहीं, व्हेती रही खळखळ ।

यही है जवाब जीवन का। बंधियार जीवन का कोई मूल्य नहीं। रामकथा हमें ये सिखाती है कि हम निरंतर आगे बढ़ें। जीवन उसे कहते हैं जो निरंतर प्रवाहित हो। ट्रेईन ट्रेक पर रहे तो भले धीमी चले लेकिन आगे के स्टेशन अपने आप

आते रहते हैं। ट्रेक पर होना चाहिए। हमारी युवानी ट्रेक पर रहे और चलती रहे। दुनिया में दो प्रकार के इन्सान होते हैं; कुछ लोग वक्तव्य को पकडते हैं, कुछ लोग व्यक्तित्व को पकडते हैं। मीरां का संबंध कृष्ण के वक्तव्य के साथ नहीं है, व्यक्तित्व के साथ है। 'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई।' और ध्यान देना, जिस वक्तव्य के पीछे महान व्यक्तित्व होता है उसके वक्तव्य की नोंध ली जाती है। इस कथा का केन्द्र है मानव और मानव भगवान। दूर के भगवान को प्रणाम करो, निकट के भगवान को पहचानो, अपनाओ।

मेरे पास एक चिठ्ठी भी है, ''बापू, कल आप ने निवेदन किया, भूखे को भोजन देना; पात्र-अपात्र न देखा जाए। नव दिन की इस कथा को श्रवण कर रहे एक युवक हेरो की एक हाईस्कूल में पढ़ता है। उसने सीरिया के भूखे बच्चों के लिए एक सौ आठ 'हनुमान चालीसा' का पाठ रखा। और इक्कीस हजार पाउन्ड इकठ्ठा किया और सीरिया चिल्ड्रन चेरिटी को भेंट दिया। आप जो युवापीढ़ी में सद्भाव और सुसंस्कार के बीज यहां कथा में बोए जा रहे हैं, उसका उत्तम परिणाम और प्रमाण मिल रहा है।'' मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। ये युवक मेरे लिए भगवान है। सोचो, अपनी क्षमता का सदुपयोग करो। समय बीता जा रहा है। हम गाय में भगवान देखते हैं, गरीब में क्यों नहीं? यत्रतत्रसर्वत्र वो ही बिराजमान है। मंदिरो में जाए लेकिन जो जीवंत मूर्तियां है उसका क्या? मैं तो बोलूंगा लेकिन समाज की माताओं का कर्तव्य है, अपने बच्चों को अपने हृदय के दूध से धर्म पीलाओ।

तो, हर कांड में भगवान की ख़ोज कर रहे हैं हम। 'किष्किन्धाकांड' में कौन भगवान? भगवान की परिभाषा क्या?

'पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान।'

भगवान की एक ओर व्याख्या। भगवान उसको कहते हैं जो हम कितने ही मंद हो, हमें भूले ना। हम कितने ही कुटिल और अज्ञानी हो, हमें भूले ना। चूटकी ली हनुमानजी ने राम से कि हम मंद, मोहबश, कुटिल, अज्ञानी और तू भगवान है। भगवान का कर्तव्य है कि कैसा भी हो, भूलना नहीं। और आज तू मुझे भूल गया? इसमें छीपी है भगवता की व्याख्या। कभी भी ऐसा मत सोचना कि हम मंद है; है तो है! हम संसार में है तो मोह है; हम कुटिल है, अज्ञानी है। लेकिन तू तो भगवान हो। हम तुम्हें भूल जाए लेकिन भगवान भूले? ये तेरी इज्जत का सवाल है! इस भरोसे पर जीओ, मेरे युवान भाई-बहन!

बाप! भगवान वो है जो हम मंद हो तो हमें मध्यम बना दे। मध्यम मानी कटिभाग पे उठा ले। पैरों से कूचल न दे। मंद को मध्यम करे वो भगवान; मोहवश को नेहवश करे वो भगवान। मैं अक्सर कहता हूं, बड़ी वस्तु दे दो युवानों को; उनमें जो छोटी-छोटी वस्तु है, जो अच्छी नहीं है, वो अपने आप छूट जाएगी। आप के बच्चों को आप नहीं समझा पाए तो भगवद्कथा में अपने आप छोटी-छोटी ऐसी वस्तु उसकी छूटने लगती है। परमात्मा भगवान इसीलिए है कि मंद को मध्यम बनाते हैं। भगवान इसीलिए है कि मोहवश को प्रेमवश करते हैं। भगवान इसीलिए है कि कुटिल हृदय को सरल हृदय कर देते हैं। ये भगवान हैं।

'किष्किन्धाकांड' में भगवान को हनुमानजी से भेंट हुई। हनुमानजी से सुग्रीव के साथ मैत्री हुई। बालि को भगवान ने निर्वाण दिया। वो दंड के पीछे भी राम की करुणा थी। राम की यात्रा प्रेमप्रधान है; दंडप्रधान नहीं, वर्ना तो उस धोबी को भी दंड मिला होता। सुग्रीव को राज्य मिला, युवराज का पद अंगद को मिला और फिर भगवान चातुर्मास करने के लिए प्रवर्षण पर्वत पर गए। सुग्रीव प्रभु का कार्य भूल गया। यही मनुष्य का करीब-

करीब स्वभाव है। प्रभु ने उसका सब कुछ किया और सुग्रीव प्रभु का कार्य भूल गया तब भगवान थोड़ा भय दिखाते हैं! फिर सुग्रीव प्रभु की शरण में आता है।

योजना बनी जानकीख़ोज की। चार भाग में सुग्रीव ने टुकड़ी बना दी। और जिसमें श्री हनुमानजी है उसे दक्षिण में भेजा।। भक्ति दक्षिण में प्रगट हुई है। सब भगवान को प्रणाम करते-करते निकलने लगे तो आख़िर में हनुमान ने प्रणाम किया। ध्यान रखना, आगे रहना या पीछे रहना महत्त्व का नहीं है, कार्य महत्त्व का है; और हर वस्तु में आगे रहना अच्छा नहीं है। भगवान वो है जो अंतिम को निकट बुलाए। रस्किन के इस मंत्र को महात्मा गांधी ने उठाया था। जो आख़िर में था उस हनुमानजी ने निकट बुलाया और अपनी मुद्रिका दी। मुद्रिका पर 'राम' लिखा था, अब मालिक की मुद्रिका सेवक पहन नहीं सकता, तो श्री हनुमानजी ने ये मुद्रिका मुख में रखी -

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख मांहि।

रामनाम तो मुख में ही शोभा देता है। इसलिए हनुमानजी ने रामनाम की मुद्रिका अपने मुख में रखी। अभियान का आरंभ हुआ। सब समंदर के तट पर आ गए। वहां संपाति ने जानकी की ख़बर दी। सीता तो है समंदर पार, जाए कौन? जामवंत के आह्वान पर हनुमानजी पर्वताकार हुए। युवान भाई-बहन, हनुमानजी झुककर जामवंत का मार्गदर्शन लेते हैं। यहां सीखना हैं, युवानों को चाहिए काम के लिए उठना होगा लेकिन बुज़ुर्गों से मार्गदर्शन भी प्राप्त करना होगा। श्री हनुमानजी तैयार होते हैं, वहां 'किष्किन्धाकांड' पूरा होता है।

'सुन्दरकांड' के आरंभ में श्री हनुमानजी लंका में प्रवेश करते हैं। हर मंदिर में हनुमानजी ने जानकी की ख़ोज की लेकिन बड़े-बड़े योद्धा सोए थे! रावण भी भोगों में लिपटा है! श्री हनुमानजी एक भवन देखते हैं; वहां हरिमंदिर बिलग था, तुलसी का पौंधा आंगन में रखा था। हनुमानजी को लगा, यहां सज्जन कैसे? हरेक अयोध्या में कोई मंथरा भी होती है और हरेक लंका में कोई विभीषण भी होता है। ख़ोज के लिए चाहिए हनुमानजी की आंख। हनुमानजी इस भवन के आंगन में जाते हैं। वो ही समय विभीषण जागता है। हमारे जीवन में कोई हनुमंत जैसा संत आता है तभी तो हम जागते हैं, वर्ना हम सोए रहते हैं! विभीषण ने श्री हनुमानजी को भक्ति की युक्ति बताई।

श्री हनुमानजी पहूंचते हैं अशोकवाटिका में। छीपे हुए हनुमानजी मुद्रिका डाल देते हैं। श्री हनुमानजी ने परिचय दिया कि मैं रामदूत हूं। दुनिया में चार प्रकार के दूत होते हैं-एक रामदूत; फिर राजदूत; तीसरे, धर्मदूत; और चौथा, कालदूत। चारों का 'रामायण' में जिक्र है। माँ और बेटे का मिलन हुआ। प्रभु का संदेश दिया। जानकीजी को आनंद हुआ। हनुमानजी को आशीर्वाद मिला। हनुमानजी ने बाग में से फल खाएं, तरु तोड़े, राक्षस पकड़ने आए। लंका में ख़बर गई। हनुमानजी ने अक्षय का क्षय किया। फिर इन्द्रजित हनुमान को बांधकर रावण की सभा में ले गया। रावण हनुमानजी को मृत्युदंड का एलान करता है। विभीषण आता है और कहता है कि दूत को मृत्युदंड न दिया जाए। फिर उसको जलाने की बात आई। हनुमानजी की पूंछ जला दी गई। भक्ति के दर्शन करनेवालों को लोग जलाते हैं। पूंछ मतलब प्रतिष्ठा। पूरी लंका जलाई; गलत मान्यताओं का दहन हुआ। जानकीजी ने चूड़ामणि दी हनुमानजी को। और हनुमानजी लौट गए मित्रों के साथ सुग्रीव के पास। राम के पास पहूंचे। निर्णय हुआ कि अब विलंब न करे। और पूरी सेना समंदर के तट पर आती है। विभीषण शरण में आया।

'लंकाकांड' के आरंभ में भगवान सेतुबंध की रचना करते हैं। वहां रामेश्वर भगवान की स्थापना करते हैं। वैष्णव और शैवों का भी ये सेतु बना। सेना पार हुई।

सुबेल पर प्रभु का ड़ेरा। सायंकाल रावण का महारस भंग हुआ। दूसरे दिन अंगद राजदूत बनकर रावण की सभा में। रावण को मनाने की चेष्टा। असफल; युद्ध अनिवार्य; घमासाण युद्ध। एक के बाद एक सब का निर्वाण। आख़िर में इकत्तीसवें तीर से रावण को निर्वाण दे दिया। रावण का संस्कार, विभीषण को राज। जानकी और प्रभु का मिलन। पुष्पक तैयार होता है। प्रभु अपने सखाओं को लेकर अयोध्या की ओर लौटते हैं। हनुमानजी से कह दिया गया कि आप अयोध्या जाकर भरत को ख़बर कर दो। हनुमानजी अयोध्या जाते हैं। भगवान का विमान शृंगबेरपुर, केवट के पास गए। अंतिम आदमी याद रहना चाहिए। केवट ने उतराई लेने का इन्कार किया। प्रभु इनको साथ लेते हैं। किसको भगवान कहोगे? जो आप को तीन वस्तु दे वो भगवान। और वो तीन वस्तु नित्य तुम को मिले।

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान ।

बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान ।।

कौन भगवान? जो हमें विजय दे, जो हमें विवेक दे और जो हमें विभूति दे। मेरे भाई-बहन, मैं थोड़ा ऐसा आदमी हूं कि जय-विजय के पक्ष में नहीं हूं। मैं तो 'हारे को हरिनाम।' लाओत्सु ने कहा था अंतिम जो बैठेगा उसको कोई उठाएगा नहीं। हार गया है उसको दुनिया में कोई जीत नहीं सकता। विजय में अहंकार की थोड़ी आवाज़ आती है। इसलिए मैं बोलता हूं 'रामचंद्र भगवान प्रिय हो।' क्योंकि जय के सामने पराजय ख़डा है। एक ऐसी गेइम खेलो दुनिया के स्टेडियम में जिसमें या तो दोनों हारे या दोनों जीते। रामकथा का मंत्र है प्रेम। तो, यहां विजय का अर्थ है कि भगवान वो है जो हमें हमारा विजय अपने मन पर कराए। जो मन चौबीस घंटों हमें पराजित कर रहा है वो मन पर हमारा विजय हो। ये नव दिन मन ठीक चला लेकिन फिर हमारा पराजय! लेकिन कपड़ें मैले हो तो बार-बार धोओ, सद्कथा सुनो, सत्संग करो। कोई भी शुभतत्त्व हमारे लिए सत्संग है। एक अच्छी नवलकथा हमारे लिए सत्संग है। गुरु देता है, भगवान देता है हमें हमारे मन पर स्नेहयुक्त नियंत्रण। मन का दमन नहीं, मन से समझौता। ये विजय है। भगवान महावीर स्वामी ने कहा है, जो अपने मन को जीते वो ही वीर है। मन की जितनी-जितनी विकृतियां है उसे गुरुकृपा से स्नेहयुक्त नियंत्रण में रखे।

दूसरा, गुरु बुद्धि पर विजय दिलाता है। गुरुकृपा के बिना बुद्धि पर विजय नहीं आएगा। आप विजय की कगार पर जाते हैं लेकिन गुरुकृपा नहीं, तो बुद्धि आप को वहां से लौटा देगी। आप बौद्धिक है लेकिन किसी ऐसे

कौन भगवान? जो हमें विजय दे, जो हमें विवेक दे और जो हमें विभूति दे। मैं जय-विजय के पक्ष में नहीं हूं। विजय में अहंकार की थोड़ी आवाज़ आती है। यहां विजय का अर्थ है कि भगवान वो है, जो हमें हमारा विजय अपने मन पर कराए। दूसरा, बुद्धि पर विजय दिलाता है। तीसरी विजय चित्त पर। यहां विजय का मतलब है, पूरे अंत:करण पर स्नेहयुक्त नियंत्रण। और ऐसा जो हमें दे वो भगवान। बाह्य-भीतर दोनों विवेक। वाणी का विवेक; वर्तन का विवेक। वो हमें जो दे वो हमारा भगवान। विभूति मानी ऐश्वर्य। परमात्मा ने ऐश्वर्य दिया है तो किसी भगवन् के पास जाकर ये भी प्राप्त करो कि बहिर् ऐश्वर्य की तरह हमें भीतर का भी ऐश्वर्य मिले; हमें आंतरिक संपदा प्राप्त हो।

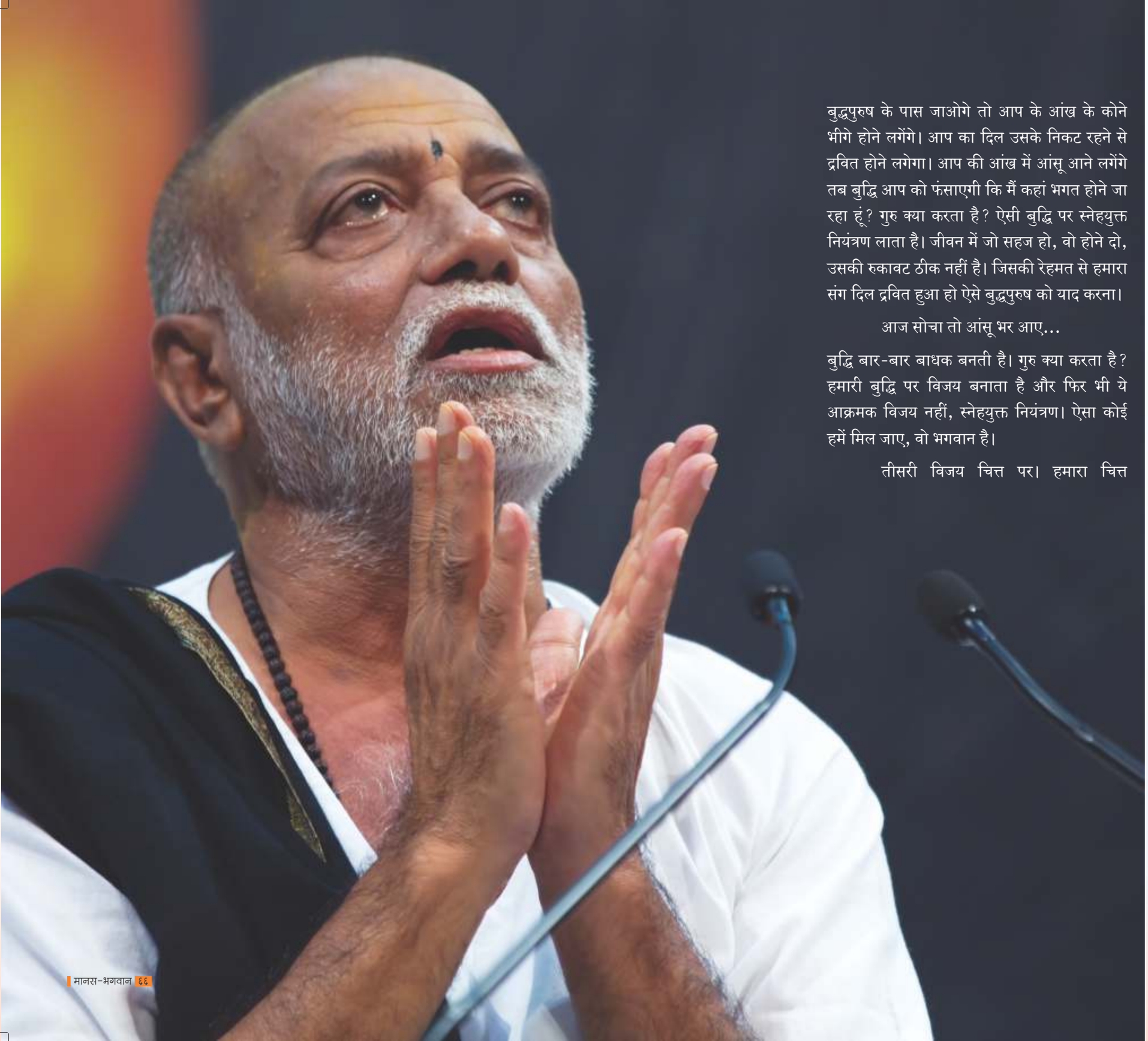

बुद्धपुरुष के पास जाओगे तो आप के आंख के कोने भीगे होने लगेंगे। आप का दिल उसके निकट रहने से द्रवित होने लगेगा। आप की आंख में आंसू आने लगेंगे तब बुद्धि आप को फंसाएगी कि मैं कहां भगत होने जा रहा हूं? गुरु क्या करता है? ऐसी बुद्धि पर स्नेहयुक्त नियंत्रण लाता है। जीवन में जो सहज हो, वो होने दो, उसकी रुकावट ठीक नहीं है। जिसकी रेहमत से हमारा संग दिल द्रवित हुआ हो ऐसे बुद्धपुरुष को याद करना।

आज सोचा तो आंसू भर आए...

बुद्धि बार-बार बाधक बनती है। गुरु क्या करता है? हमारी बुद्धि पर विजय बनाता है और फिर भी ये आक्रमक विजय नहीं, स्नेहयुक्त नियंत्रण। ऐसा कोई हमें मिल जाए, वो भगवान है।

तीसरी विजय चित्त पर। हमारा चित्त संग्राहक है। जनम-जनम के संस्कारों का ये गोडाउन है। इसलिए हमारी चित्तवृत्तियां भटकती रहती है। जो महत् है उनकी चरण की धूल से हमारे चित्त की वृत्तिओं पर विजय होगा, स्नेहयुक्त विजय। और आख़िरी विजय अहंकार पर। सब का अपना-अपना अहंकार होता है। सबको अपनी-अपनी अस्मिता होती है। हमारे छोटे-बड़े अहंकारों पर हमें कौन विजयी बनाता है? बुद्धपुरुष, जिसको हम भगवान कहते हैं। तो, विजयी होना कोई व्यक्ति या स्थान पर नहीं। यहां विजय का मतलब है, पूरे अंत:करण पर स्नेहयुक्त नियंत्रण। और ऐसा जो हमें दे वो भगवान।

विजय के बाद का शब्द है 'विवेक।' 'लंकाकांड' के समापन का ये दोहा है। जो हमें विवेक दे वो भगवान। माँ-बाप बच्चों को विवेक सीखाए, उनके लिए माँ-बाप भगवान। घर में ख़ोजो भगवानों को। सब मूर्तियां अपने इर्द-गिर्द है। शिक्षक हमें स्कूल में अच्छा पाठ सिखाता है, भगवान। 'विवेक' बड़ा प्यारा शब्द है। बाह्य-भीतर दोनों विवेक। विवेक क्या है कि कैसे बैठना, कैसे उठना, कैसे बोलना आदि। वाणी का विवेक, वर्तन का विवेक। वो हमें जो दे वो हमारा भगवान।

आगे का शब्द है, 'विभूति।' विभूति मानी ऐश्वर्य। ऐश्वर्य बाहरी, उसकी भी निंदा क्यों? कई लोग पैसों की निंदा करते हैं वो ठीक नहीं है। ये कथा बिना पैसे हो सकती है? धन खराब नहीं है; हमारे देश की ऋषिओं की परिभाषा में एक पुरुषार्थ है। उसका सही उपयोग होना चाहिए। दुनिया अच्छा ख़ाए-पीए तो हम राजी क्यों नहीं होते? हा, परमात्मा ने ऐश्वर्य दिया है तो किसी भगवन् के पास जाकर ये भी प्राप्त करो कि बहिर् ऐश्वर्य की तरह हमें भीतर का भी ऐश्वर्य मिले; हमें आंतरिक संपदा प्राप्त हो। आदमी धन की आलोचना करे वो मेरी दृष्टि में ठीक नहीं है। धन एक पुरुषार्थ है; उसका सम्यक् उपयोग हो। हमें भीतरी ऐश्वर्य से भर दे, 'दैवी

संपदा' जिसको 'भगवद्गीता' ने कहा। पहला ऐश्वर्य है दैवी संपदा का, जो बुद्धपुरुष देता है, वो है अभय। गुरु हम को अभय करता है। वो भगवान है, हमें अभय देता है। निर्भय उपकरणों के द्वारा हुआ जा सकता है; आप की चारों ओर बोड़ीगार्ड हो वो उपकरण है। अभय वो है जो मैदान में घुमता है, ये भीतरी ऐश्वर्य है। अंदर का भाव जो है उसको प्रगट करे। पचीससो साल के बाद भी बुद्ध की मूर्ति देखते हैं तो क्यों भाव जागता है? ये अंदर का ऐश्वर्य गुरु देता है। जैसे मोम अग्नि के पास जाने से पीघलने लगता है वैसे हमें द्रवित करती है। राज कौशिक का एक शे'र है -

उसने देखते ही मुझे दुआओं से भर दिया,

मैंने तो अभी सज़दा भी नहीं किया था।

जो हमारी भीतरी संपदा अभय को ख़ोले वो भगवान है। मुझे अन्य संपदा का वर्णन नहीं करना, लंबा हो जाएगा। और मुझे लगता है आदमी में अभय आता है तो धीरे-धीरे सब संपदा आने लगती है। और मेरे अनुभव में अभय आता है केवल सत्य से। जितना सत्य ज्यादा उतना वो अभय। महात्मा गांधी अपने बचपन में अंधेरे से डरते थे लेकिन उसे फिर उसके सत्य से अभय मिला। हम और आप गांधी न बने, लेकिन जितनी मात्रा में हम सत्य का निर्वहण करके सत्य के करीब जीए। जीवन में जितना सत्य के करीब जीया जाए, अभय की मात्रा बढ़ेगी।

'उत्तरकांड' के आरंभ में गोस्वामीजी कहते हैं, भरतजी की दशा तो अकथनीय है! लेकिन डूबते आदमी को जैसे कोई जहाज मिल जाए वैसे हनुमानजी आ गए! श्री भरतजी ने पुछा, आप कौन है? तब हनुमानजी जवाब देते हैं, 'मैं पवनपुत्र हनुमान हूं। प्रभु का सेवक हूं। ठाकुर सकुशल सजानकी-लक्ष्मण आ रहे हैं।' अयोध्या में बात फैली है; लोग भाव में डूबे हैं!

विमान उड़ान भरकर अयोध्या के सरजू के प्रांगण में उतरा है। सब को प्रभु मिल रहे हैं। भगवान ने अमित रूप धारण किए। जैसा जिसका भाव; और सब को लगा कि भगवान सब से पहले मुझे ही मिल रहे हैं! तुलसीजी लिख़ते हैं, एक क्षण में प्रभु सब को मिले। और तुरंत लिख दिया, 'हे पार्वती, इस मर्म को कोई जान नहीं पाया।' भगवान की एक ओर परिभाषा। एक क्षण में जो सब को संतुष्ट कर दे, सब को लगें कि ये हमारा है, ये भगवता के बिना संभव नहीं है। और जिसका परिपूर्ण मर्म कोई नहीं जान सकता वो भगवान है। 'मानस' में लिखा है, उसका मर्म कोई नहीं जान सकता, 'बिधि हरि संभु नचावनिहारे।' वो परम तत्त्व को वो ही जान सकता है जिसको वो जना दे।

राम-लखन-जानकी सब के साथ नगर में प्रवेश करते हैं और वे सब से पहले कैकेयी के भवन गए। युवान भाई-बहन, कथा समापन की ओर जा रही है; हम और आप इस बात को ज्यादा चरितार्थ करें। रामजी सब से पहले कैकेयी को मिले। आज तक 'मानस' का ये प्रश्न ऐसे ही खड़ा है कि कैकेयी निंदनीय है या वंदनीय है? और संतों ने उसका अच्छा जवाब दिया है कि कैकेयीनरेश की पुत्री के रूप में कैकेयी निंदनीय है लेकिन भरतजननी के रूप में वो परम वंदनीय है। आदमी में दोनों पक्ष होता है मात्राभेद से। आदमी कईओं के लिए वंदनीय होता है, कईओं के लिए निंदनीय होता है। कैकेयी लज्जित है, रामजी ने जाना। माँ के चरण रामजी ने पकड़ लिए। फिर सुमित्रा को मिले, माँ कौशल्या को मिले; वात्सल्य का सिंधु उमड़ पड़ा!

वसिष्ठजी के कहने पर आज ही राजतिलक का निर्णय हुआ। राम सिंहासन के पास न गए, दिव्य सिंहासन उनके पास आया। सत् कभी सत्ता के पास नहीं जाता। भगवान राम-जानकी सब को प्रणाम करते हुए सिंहासन पर बिराजमान हुए। और सब से पहला राजतिलक वसिष्ठजी भगवान राम के भाल पे करते हैं-

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा ।

पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ।।

त्रिभुवन में जयजयकार हुआ है। छः मास बीत जाते हैं। और जो मित्र प्रभु के साथ आए थे, रहते तो थे अयोध्या में लेकिन याद आने लगी थी घर की! तो प्रभु ने मित्रों को बुलाया और बिदा दी। भगवान किसी को फ़र्ज़च्यूत होन को सिख़ाता ही नहीं, अपनी फ़र्ज अदा करो। बिदा देते वक्त भगवान सब को कुछ न कुछ भेंट देते हैं लेकिन केवट को कुछ नहीं दिया; कहते हैं, 'उससे तो मैं एक चीज़ खुद मांगूगा।' देखो, समर्थों को भगवान देता है, असमर्थों से खुद लेता है। क्या मांगा केवट से? 'सदा रहेहु पुर आवत जाता।' तुम्हें जब समय मिले तो मेरे पास आते रहना। आख़िरी व्यक्ति को राम बुलाता है।

सब की बिदा; एक हनुमानजी रहे। फिर रामराज्य का वर्णन है। समयमर्यादा बीती, जानकीजी ने दो पुत्रों को जनम दिया, लव-कुश। इस तरह लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत-इन भाइओं के वहां भी दो-दो पुत्र हुए। फिर दूसरी बार सीतात्याग के प्रसंग में विवाद है, अपवाद है, दुर्वाद है; इसलिए तुलसीदासजी ने ये नहीं लिखा। तुलसी चाहते हैं कि संसार में संवाद हो। युवान भाई-बहन, जहां तक कथा याद रहे, अपवाद-दुर्वाद-विवाद में न जाए। विश्व को जरूरत है संवाद की। ये प्रसंग मैं कभी नहीं लेता, क्या जरूरत है? ज्यादा खुलासा वो करता है जो असत्य से भरा होता है। मैं वो पंक्ति गाता रहता हूं-

कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना ...

तो, वहां रामकथा तुलसीदासजी ने बंद कर दी। उसके बाद आप पाओगे भुशुंडिजी का चरित्र और गरुड के सात प्रश्न। कागभुशुंडिजी जैसे बुद्धपुरुष ने सात प्रश्नों के उत्तर दिए। रामकथा सात श्लोकों के मंगलाचरण से शुरू हुई और विराम लेती है सात प्रश्नों के प्रत्युत्तर में।

याज्ञवल्क्य महाराज ने भरद्वाजजी के सामने कथा को विराम दिया कि नहीं वो स्पष्ट नहीं है। शिवजी ने कैलास के उत्तंग शिख़र से पार्वती को कथा सुनाते कहा, 'देवी! अब कुछ सुनना है?' पार्वती ने कहा, 'प्रभु! आप की कथा सुनते तृप्ति नहीं होती। लेकिन मैं अंदर से कृतकृत्य हो गई।' महादेव ने कथा को विराम दिया। कागभुशुंडिजी ने विराम दिया। और आख़िर में तुलसी अपने मन को और संतसभा को कथा सुनाते समय, विराम देते समय बोले, इस कलिकाल में ओर कोई साधन नहीं है। तुलसी कहते हैं-

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि ।

संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ।।

राम को सुनो, राम को स्मरो और राम को गाओ। तो, गोस्वामीजी ने भी इस कथा को विराम दिया। मेरी व्यासपीठ आप से संवाद कर रही थी। मैं भी कथा को विराम देने की ओर हूं। पहले तो आप सब को एडवान्स में गुरुपूर्णिमा की बहुत-बहुत बधाई देता हूं। दुनिया के बुद्धपुरुषों का आशीर्वाद हम सब पर उतरे और हम सत्य, प्रेम, करुणा की डगर पर ओर गति करे।

अब मैं अपने शब्दों को विराम की ओर ले चलूं। आयोजकों के प्रति मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। आशीर्वाद देना बड़ा मुश्किल काम है। मेरा आधार तो हनुमानजी है, उनके चरणों में प्रार्थना करूं कि आप की परंपरा में ऐसा शुभ होता ही रहे; खुश रहो। मैं रामकथा अभी बंद कर दूंगा, आप जीवन की कथा ख़ोलिएगा और इनमें कोई कांड ठीक न हो तो सत्संग के सूत्रों से, अपने पैरों से आगे बढ़ना। और साहब! ये बड़ा प्रेमयज्ञ है। इसका रसमय फल किसको समर्पित करें? आओ, हम सब मिलकर इस नवदिवसीय रामकथा का ये रसपूर्ण फल दिव्य चेतना को, मानव भगवान को हम समर्पित कर देते हैं, कबूल करे।

मानस-मुशायरा

वो अपने आप को हर शख़्स से काबिल समझता है।
अज़ब इन्सान है नुकसान को हांसिल समझता है!
न जाने कौन-से माहौल से होकर ये आया है?
में बिस्मिल बोलता हूं और वो कातिल समझता है!

–मासुम गाज़ियाबादी

शबभर रहा ख़याल में तकिया फ़कीर का,
दिनभर सुनाऊंगा तुम्हें किस्सा फ़कीर का।
हिलने लगे हैं तख़्त उछलने लगे हैं ताज,
शाहों ने जब सुना कोई किस्सा फ़कीर का।

– विजेन्द्रसिंह 'परवाज़फ

इन फ़कीरों को गज़ल सुनाया करो,
जिसकी आवाज़ में लोबान की खुशबू है ।

– बशीर बद्र

चढ़ जाए तो फिर उतरता कहां है कभी?
ये इश्क का नशा भी गरीब के कर्ज़ जैसा है ।

–मुनव्वर राणा

उसका फ़र्ज क्या है वो अहलेशियासत जाने,
मेरा पैगाम मोहब्बत है जहां तक पहूंचे ।

– जिगर मुरादाबादी

कुछ न किसी से बोलेंगे।
तन्हाईयों में रो लेंगे।
निंद तो क्या आएगी 'फ़राज़'?
मौत आई तो सो लेंगे।

– अहमद फ़राज़

कवचिदन्यतोऽपि

शिक्षाघाट, दीक्षाघाट, भिक्षाघाट और क्षमाघाट ये साधुओं के चार घाट हैं

ध्यानस्वामीबापा एवॉर्ड अर्पण समारोह में मोरारिबापू का प्रेरक वक्तव्य

जिस श्रद्धास्थान में यह उत्सव हो रहा है वह पूज्यपाद ध्यानस्वामीबापा की समाधिस्थ चेतना को मेरे प्रणाम। समग्र निम्बार्कीय प्रवाही परम्परा को भी मेरे प्रणाम। इस समाधि की प्रेरणा से जो विचार आया वह चरितार्थ हो रहा है और उस क्रम में आज पूज्य ध्यानस्वामीबापा एवॉर्ड जिस पावनधाम को समर्पित हो रहा है वह परमपूज्य लोहलंगरी बापा का स्थान, वडवाला देव, गोंडल को हम अर्पण करते हैं। इस प्रेमअर्घ्य का स्वीकार करने पधारे गादीपति पूज्य सीतारामबापू, उनका समग्र सेवकगण, सभी महंतश्री, संतश्री इन सभी को भी मेरे प्रणाम।

मुझे आनंद है कि आपने हमारे प्रेमअर्घ्य का स्वीकार किया। साहब, पैसे पाने के लिए अन्यलोग दौड़ते हैं, पर जो साधु है उन्हें देने के लिए हमें दौड़ना

पड़ता है। फिर भी पैसे से ये लोग पकड़े नहीं जाते, क्योंकि उन्हें कोई आकांक्षा नहीं है। यह इक्कीसवीं सदी का समय है। कलिकाल है। पर यह काल अच्छा है मैं ऐसा कहता हूं। तुलसीदासजी ऐसा कह गए हैं। मुझे भी उनका कथन मान्य है। 'कलि प्रभाव चहु ओर।' कलियुग का प्रभाव चारों ओर है। सब पर कमोबेश प्रभाव पड़ा है। बापू, आपकी सेवा और भजन के कारण अभी भी हमारे धर्मस्थानों पर ध्वजा फहरा रही हैं। कहीं-कहीं ध्वजा फडफडाहट होती है। फहराने में और फडफडाहने में फर्क होता है। अभी भी हमारे पास ऐसे स्थान है जहां ध्वजा फरफराहती है; जिससे आनंद होता है, शुभ होता है। स्थानीय पदाधिकारियों, साधु-संत, धर्मावलंबी, धर्माचार्य ये सभी सचेत हैं कि यह ध्वजा फरफराए, फडफडाहट न हो।

धर्मस्थान में जो उनके हो उन्हें ही रोटी दी जाय, अन्य को न दी जाय! वहां ध्वजा फहरती नहीं, फडफडती है! ध्वजा तो उसकी फहराती है जहां ज्ञाति-जाति-वर्ण भेद नहीं होता। एक ही पंक्ति में बैठकर सहभोज करे। अभी मैं अहमदाबाद में कथा करता था। बड़े शहरों में कथा में भोजन का आयोजन कम होते हैं। मुझे तो अहमदाबाद में भी भोजन का आयोजन अच्छा लगता है। पर लोगों की नुक्तेचीनी की आशंका रहती है। तो क्या हुआ? क्या इससे मंदिर का प्रसाद बंद कर दे? क्या मंदिर की आरती बंद कर दे? धूप देना बंद कर दे? टीका करनेवाले बंद हो जाते हैं पर ये कायम रहते हैं। मैंने कहा, भोजन रखें तो मुझे प्रसन्नता रहेगी। भोजन रखा गया। बहुत कम लोग भोजन करते थे। फिर प्रश्न हुआ मुफ्त में खाना मिलने पर ये लोग कुछ नहीं करेंगे! इससे अच्छा है कि टोकन रखें। मैंने हंसते-हंसते कहा कि ईश्वर ने तुझे मनुष्य देह दिया तब तूने टोकन दिया था?

बड़ें भाग मानुष तनु पावा।

सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।

और वह भी 'कबहुक करि करुणा।' इस तरह यह देह मिला तो टोकन मांगा नहीं था। बिना टोकन सबको टोक-टोक करते हैं कि ऐसा न करे, ऐसा न करें! भोजन न कराये, बाबा के पीछे-पीछे मत घूमो! मैंने उस समय कहा कि ऐसा करते रहना ही पड़ेगा। कोई चारा नहीं है। अहम् मुक्त चित्त से करना पड़ेगा।

मैंने तो अहमदाबाद की कथा में बाबा की व्याख्या संक्षेप में दी कि 'जो डरे नहीं वही संन्यासी।' जो डरे वो संन्यासी नहीं। क्यों डरना? जिसके पास माला हो, 'रामचरित मानस' हो, तिलक हो, 'हनुमानचालीसा' हो और सबसे ऊपर गुरु का हाथ हो वो क्यों डरे? रूपयेवाले डरते हैं। पदप्रतिष्ठावाले डरते हैं। नेटवर्क से सन्मान पानेवाले डरे। पाखंडी डरे। दूसरों का ज्ञान अपने नाम पर करनेवाले डरे। शोषण करनेवाले डरे। संन्यासी नहीं डरते। संन्यासी डरे यह मैं गंवारा नहीं कर सकता। ऐसे स्थान वर्षों से टिके हुए हैं। कहते हैं कि गंगोत्री में बर्फ इधर-उधर होता रहता है। गौमुख में से जो गंगा निकलती है वह यूं धीरी पड़ जाती है पर वह गंगा यूं ही बहती रहती है। प्रवाह जारी रहता है। उसी तरह सेवाधर्म स्थानों में कालान्तर से प्रवाह कमजोर पड़ा होगा; कहीं गति ज्यादा रही होगी। पर टूटा नहीं, अटका नहीं है। बापू, मुझे प्रसन्नता है कि अभी आपके स्थानों में युवा महंत आ रहे हैं। वे विचारशील हैं। परस्पर मिलते हैं। समाज के प्रवाह को परखते हैं। साथ ही साथ साधुता को बरकरार रखते हुए सेवाधर्म को आगे बढ़ाते हैं।

तो, यह सेवाधर्म की वंदना है। इस ट्रस्ट ने निर्णय लिया कि हमें ऐसे सेवाधर्म के स्थान चाहिए जो रोटी द्वारा समाज को जोड़े उनकी वंदना करनी चाहिए।

गांधीजी के पास आदिवासी जाता है सिर्फ दर्शन हेतु। पंद्रह-बीस कि.मी. चलकर आया था। जुगतराम दवे से पहचान थी। अत: बापू ने कहा, पहले उसे खाना खिला दो। मैं उसे निश्चित ही मिलूंगा। अपने यहां कहा जाता है 'टुकडो त्यां हरि ढूकडो।' मैं थोड़ा फर्क कर कहता हूं हरि जिनके निकट होता है उनके पास टुकडा होता ही है। जिनके घर टुकडा नहीं होता उनको हरि निकट नहीं होता। ये लड़के जो अच्छे कार्य में पैसे खर्च करते हैं, तो तुम्हारा हरि तुम्हारे निकट ही होगा। नहीं तो तुम्हें ऐसा विचार आता ही नहीं।

शास्त्र कहते हैं शरीर ब्रह्म का घर है। 'इश्वर: सर्व भूतानाम्।' शरीररूपी घर के कमरे में मैं रहता हूं, ऐसा कहा। शरीर में ब्रह्म रहता है पर शरीर को ब्रह्म नहीं बताया। अद्वैत में तो सब ब्रह्म ही हो गया। पर शरीर को ब्रह्म नहीं कहा। पैसे हो तो सत्कर्म हो सके पर अभी तक मैंने तलगाजरडी आंखों से ऐसा नहीं पढ़ा है कि रूपये को ब्रह्म कहा हो। मूल ब्रह्मतत्त्व शरीर को लागू नहीं होता; रूपये को भी लागू नहीं है; पद-प्रतिष्ठा को भी नहीं। इन्द्रियों में मन को परमात्मा की विभूति मानी गई है। पर वह विभूति है, विभु नहीं है। मन, बुद्धि ब्रह्म नहीं है। ब्रह्म बुद्धि को प्रेरित करता है। ये शास्त्र वचन है कि 'बुद्धिप्रेरक सिव।'-'रामचरित मानस।' अहंकार तो ब्रह्म है ही नहीं। चित्त तो केमेरा है। सारी वस्तुओं का संग्रह करता है। चित्त ब्रह्म में एकाग्र रहे उसे योग कहते हैं। पर चित्त भी ब्रह्म नहीं है। धन्य है उपनिषद का ऋषि कि जिसने केवल अन्न को ब्रह्म कहा। तन, मन, बुद्धि, चित्त कोई भी ब्रह्म नहीं, अहंकार, रूपया, पद, प्रतिष्ठा कुछ भी नहीं; केवल अन्न ब्रह्म है। 'अन्नं ब्रह्मैति व्यजानात्।' तू अन्न को ब्रह्म मान। अत: साधु ने रोट पकड़ा। बापू, मुझे ऐसा लगा है साधु ने शास्त्र पकड़ा उससे पहले रोट पकड़ा। क्योंकि उसे नगद ब्रह्म पकड़ना था। शास्त्रों की पढ़ाई के बाद भी ब्रह्म कहां पकड़ में आता है? शास्त्रों के अद्भुत विद्वान जिनके पास संस्कृति का ज्ञान होता है वे भी अपनी मनमानी न हो तब एक मिनट में विवेक खो बैठते हैं इसका मोरारिबापू साक्षी है! मुझे महसूस होता है कि ब्रह्म विद्या कहां गई? क्योंकि ये सब आ जाय तो भी ये ब्रह्म नहीं है। शायद मेरे साधुओं ने शास्त्र से भी पहले यह मांग रखी कि हमें ब्रह्म के रूप में रोटी चाहिए। केवल हमारे लिए नहीं पर सबके लिए चाहिए। यह शास्त्र वचन है। गृहस्थ जीवन में साधु को यह सेवा-पूजा प्राप्त हुई। केवल मंदिर नहीं, पूजा का अधिकार भी मिला। केवल झालर और नगाड़े नहीं पर साथसाथ चूल्हा भी मिला, फूंकनी मिली, लकडियां मिली कि आरती हो जाने के बाद जो दरवाजे पर आए पहले उसे भोजन कराना।

मुझे ऐसा लगता है कि साधुओं ने ब्रह्म पकड़ ने से पहले रोटी पकड़ी; ब्रह्मरूप में पकड़ी। हरीशभाई और उनकी टीम किसने भूखों को रोटी दी है यह ढूंढकर, गुरुजनों का अभिप्राय लेकर क्रमबद्ध आयोजन करते रहे हैं। इस परंपरा में एक साधु-स्थान को यह अर्घ्य प्रदान हो रहा है इसका मुझे व्यक्तिगत रूप से विशेष आनंद है। शंकराचार्य की परंपरा में पीठ और मठ है; तो अपनी गोसांई परंपरा में मठ कहे या पीठ कहे? वैष्णव साधु को पीठ या मठ होता है? हमारा क्या? अपनी तो व्यासपीठ है। वो भी देरी से मिली है! हमने व्यासपीठ छिनी नहीं है, व्यास ने डायरेक्ट दी है। क्योंकि वे हमें दलित मानते थे! कोई भी व्यक्ति दलित हो, तो ही वह दूसरे को दलित मानता है! मुझे पुराणों से यही प्रश्न है कि ये सभी ऋषिमुनि एक दूसरों को क्यों शाप देते रहते थे? शाप देने के लिए तप करते थे? मुझे यही कहना है कि यह जो सेवा हो रही है यह कुछ करने की इच्छा से हो रही है।

अपनी तो कोई पीठ नहीं है। न तो कोई मठ है। अपना तो देहाण स्थान है, जिसे धाम कहा गया है। अपने ठाकोरजी बिराजमान है। ऐसा मौलिक कुछ मिला है। हमें डायरेक्ट व्यासपीठ मिली है। साधु को व्यास मिले हैं। व्यास मानी साधु के पास विशाल विचार हैं। हमें साधुओं को दलित नहीं कहते थे?अभी भी गिनते हैं! अभी भी सरकारी लाभ लेने हेतु स्वयं को पिछंडी जाति के मानते हैं! छोड़ दीजिए सरकार के लाभ! सरकार पैतीस रूपये देगी, एक चौपाई आपको पैतीस हजार रूपये देगी। श्रद्धा बनाए रखिए। हमारे गांव में अमुक जाति बिरादरीवाले हमारे साथ सहभोज नहीं करते! वे ऐसा कहते हैं कि इन साधुओं की पंक्ति अलग रखिए! अरे, साधु से फूंक लगवायी है और अब नुक्ताचीनी करते हो! उस पर थूक उड़ाते हो! तेरी थूक उड़ जायेगी। हमारी फूंक कायम रह जायेगी। आज अमुक जातियों को अन्याय हुआ है उसमें हम भी आ जाते हैं। बहुत सहन किया है। यह अच्छा हुआ क्योंकि सहन करने का अच्छा फल मिला। हमारे हाथ में भजन लगा।

समाज की यह परिस्थिति है। बापू, मुझे ऐसा लगता है, हमारे पास न तो पीठ है, न तो मठ है। हमारे पास चार घाट है। एक, शिक्षाघाट, सारे बच्चे जहां पढ़ते हो। शिक्षाघाट माने? मेरा यही कहना था इतनी तपस्या कर लेने के बाद भी शाप क्यों दिए? जिनके पास पैसे हो वे पैसे देते हैं। जिनके पास जो आधिक्य हो वह दे दे। जिसका भीतर शापित हो वही शाप देते हैं। साधु के शिक्षाघाट में दंड नहीं है। दो जने वहां बैठे हो, राम की बातें करते हो, भजन करते हो वही साधु का शिक्षा घाट है।

दूसरा घाट दीक्षाघाट है। अधिकारी पात्र मिलने पर साधु को ऐसा लगता है कि अब मुझे समाधि की ओर जाना है। वह तैयारी करता है कि मेरे बाद किसको यह सौंप दूं? यह दीक्षाघाट है। तीसरा घाट भिक्षाघाट है। जिसमें यह भाव है कि मेरे आंगन आया हुआ कोई भूखा न जाय। आप आईए, हरिहर कीजिए। चौथा घाट, क्षमाघाट महत्त्वपूर्ण है। क्षमा देनी है, चाहे कोई भी हो। तुलसीदासजी ने 'विनयपत्रिका' में लिखा है -

प्रेम-बारि-तरपन भलो, घृत सहज सनेहु।
संसय-समिध, अगिनि छमा, ममता-बलि देहु।।

साधु, आप पर किसी ने शंका की हो तो मानिए कि वह शंका नहीं है; आपके यज्ञ के लिए समिध लेकर आया है। उसे क्रोध की अग्नि में मत जला देना; क्षमा की अग्नि में उसका हवन करना। चाहे साधु अग्निपूजक न भी हो पर उसके हृदय में क्षमा का अग्नि सदैव प्रज्वलित रहता है। जो दूसरों की शंकाओं के समिध को जला डालता है।

मेरी दृष्टि से साधु के शिक्षा, दीक्षा, भिक्षा और क्षमा जैसे चार घाट है। सेंजल के टीले पर न तो कोई पीठ है न तो मठ है। यहां ध्यानघाट है। चित्रकूट के घाट पर संतों की भीड़ होती थी यों आज ध्यानघाट पर मेरे सभी पूज्य महंत पधारे हैं। आप सबका मेरी ओर आदर भाव है। आप ध्यानघाट पर आते हैं इसका मुझे आनंद है, हार्दिक प्रसन्नता है। अंत में भगवतीकुमार शर्मा की दो पंक्तियां -

हरि, मने अढी अक्षर शिखवाडो!
अेंशीने आरे आव्यो छुं;
मारो अगर जिवाडो!

(ध्यानस्वामीबापा एवॉर्ड अर्पण समारोह में सेंजळधाम (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक ३-२-२०१५)

।। जय सीयाराम ।।